Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

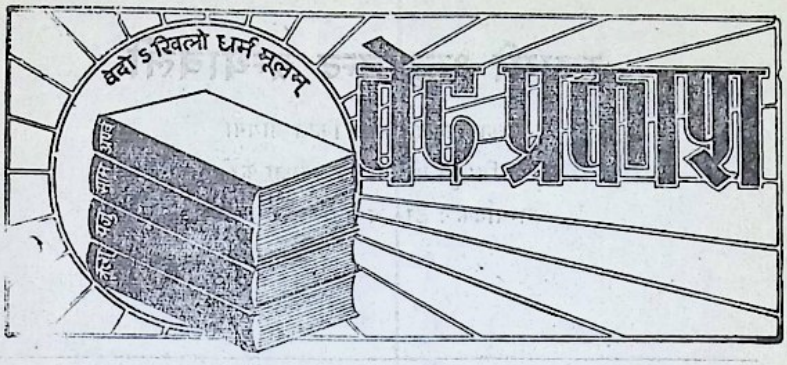

यज्ञ-महिमा

आग्ने स्थूरं रयिं भर पृथुं गोमन्तमश्विनम् ।
अङ्ग्धि खं वर्तया पविम् ॥१५२९॥

पदार्थः—(अग्ने) अग्ने ! (स्थूरम्) स्थूल (पृथुम्) बहुत विस्तृत (रयिम्) धन को (आभर) प्राप्त करा और (खम्) आकाश को (पविम्) स्वच्छ, शुद्ध (गोमन्तम्) किरणोंवाला (अङ्ग्धि) प्रकट कर और (अश्विनम्) प्राण वायु वाला (वर्तय) वर्त्ता।

भावार्थः—होम से सुसेवित अग्नि पुष्कल धन-धान्य की प्राप्ति, आकाश की स्वच्छता, धूप, वर्षा, प्राणवायु आदि का ठीक-ठाक बर्ताव और प्रकाश होता है।

अग्नि-विद्या

ईशिषे वार्यस्य हि दात्रस्याग्ने स्वः पतिः ।
स्तोता स्यां तव शर्मणि ॥ १५३३ ॥

पदार्थः—(अग्ने) अग्ने ! तू (स्वः) सुख का (पतिः) स्वामी है और (वार्यस्य) वरणीय (दात्रस्य) दान करने योग्य धनधान्य का (ईशिषे) स्वामी है, अतः मैं (शर्मणि) सुख चाहूँ तो (तव) तेरा (स्तोता) गुण-वर्णनकर्ता (स्याम्) होऊँ।

भावार्थः—अग्नि विद्या से मनुष्य उत्तम धन-धान्यादि से जो दानादि में लाये जाएँ उनके स्वामी हो सकते हैं, अतः मनुष्य को अग्नि-विषयक विज्ञान प्राप्त करनेवाला होना चाहिए और वह तब हो सकता है जबकि वे अग्नि के स्तोता=गुण खोजने में श्रम करनेवाले हों।

गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क, दिल्ली-६

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

स्वामी श्रद्धानन्द ग्रन्थावली

का प्रकाशन शीघ्र किया जायेगा

विस्तृत योजना की प्रतीक्षा करें

सम्पादक : डॉ० भवानीलाल भारतीय

महात्मा हंसराज ग्रन्थावली

इतिहासवेत्ता प्रो० राजेन्द्र जिज्ञासु द्वारा

संकलित तथा सम्पादित

महात्मा हंसराज डी. ए. वी. आन्दोलन के संस्थापकों में थे। इस ग्रन्थावली में उनकी जीवनी तथा समस्त लेख व पुस्तकों का समावेश है।

लगभग ८०० पृष्ठ

चार भागों में प्रकाशित

प्रथम भाग : तपोनिधि महात्मा हंसराज और उनका युग

द्वितीय भाग : अमृत-कलश

तृतीय भाग : अमृत-वर्षा

चतुर्थ भाग : वेदामृत

चारों भागों का मूल्य २४०-०० रु०

गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क, दिल्ली-११०००६

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

॥ ओ३म् ॥

वेदप्रकाश

संस्थापक : स्वर्गीय श्री गोविन्दराम हासानन्द

वर्ष ३६, अंक १०] वार्षिक मूल्य : दस रुपये [मई १९८७

सम्पा० : विजयकुमार आ० सम्पादक : स्वा० जगदीश्वरानन्द सरस्वती

विवाह संस्कार में वर-वधू के आसन तथा परिक्रमा का प्रकार

—स्वामी मुनीश्वरानन्द सरस्वती, गाजियाबाद

मार्च के सार्वदेशिक पत्र द्वारा विवाह संस्कार में आसन-परिवर्तन तथा लाजा-होम की परिक्रमाओं के विषय में धर्मार्य सभा के मन्त्री जी ने आर्य विद्वानों की सम्मति माँगी है। उसी के सम्बन्ध में कुछ पंक्तियाँ श्री मन्त्री जी एवं पाठकों के विचारार्थ लिख रहा हूँ।

जो विद्वान् विवाह संस्कार के आरम्भ से लेकर अन्त तक कहीं पर भी वर-वधू का आसन बदलते हैं, वे संस्कारविधि ही नहीं, अपितु पास्करादि गृह्यसूत्रों के भी विपरीत क्रिया करते हैं। संस्कारविधि और तदाधारभूत गृह्यसूत्रों के विवाह-प्रकरणों को ध्यानपूर्वक देखने से मूल ग्रन्थों में कहीं ऐसा नहीं मिलता जिसके आधार पर सप्तपदी क्रिया के बाद वर-वधू का आसन बदला जा सके। अपितु एक स्मार्त वचन ऐसा तो मिलता है कि—

श्राद्धे यज्ञे विवाहे च पत्नी दक्षिणतः सदा।

अर्थात् श्राद्ध, यज्ञ और विवाह संस्कार में पत्नी सर्वदा सर्वत्र पति के दक्षिण भाग में रहेगी। ऐसा ही वर्णन अग्निष्टोम यज्ञ के निष्केवल्य शास्त्र में भी आता है।

रही बात युक्ति की, सो ऐसी युक्ति वही लोग देते हैं, जो संस्कारविधि के उस स्थल को ठीक प्रकार से समझते नहीं या समझने का यत्न नहीं करते। सप्त-पदी के पश्चात् वर-वधू अपने-अपने आसन पर यथापूर्व अर्थात् वधू वर के दक्षिण भाग में और वर वधू के वाम भाग में पूर्वाभिमुख बैठ जाते हैं। यहाँ 'आपोहिष्ठा' आदि मन्त्रों से वर वधू के मस्तक पर जल छिड़कने के पश्चात् लिखा है कि

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

तत्पश्चात् वर-वधू वहाँ से उठके 'ओ३म् तच्चक्षुर्देवहितम्' इस मन्त्र को पढ़के सूर्य का अवलोकन करें। तत्पश्चात् वर वधू के दक्षिण स्कन्ध पर से अपना दक्षिण हाथ लेके उससे वधू का हृदय स्पर्श करके 'ओं मम व्रते ते हृदयं दधामि' इस मन्त्र को बोले और उसी प्रकार वधू भी अपने दक्षिण हाथ से वर के हृदय को स्पर्श करके इसी ऊपर लिखे हुए मन्त्र को बोले। तत्पश्चात् वर वधू के मस्तक पर हाथ धरके 'सुमङ्गलीरियम्' इस मन्त्र को बोलके कार्यार्थ आये हुए लोगों की ओर अवलोकन करे और इस समय सब लोग 'ओं सौभाग्यमस्तु, ओं शुभं भवतु' इस वाक्य से आशीर्वाद देवें। तत्पश्चात् वधू-वर यज्ञकुण्ड के समीप पूर्ववत् बैठ के……। यह इतना भाग है जिसे लोग नहीं समझ पाते। वास्तव में सूर्यावलोकन, हृदयस्पर्शन, सुमंगलीकरण और आशीर्वाद प्राप्त करना, इतनी क्रिया वर-वधू खड़े रहकर ही सम्पन्न करते हैं। वर के हृदयस्पर्श के लिए वधू खड़ी-खड़ी केवल उतने समय के लिए वर के वाम भाग में आ जाती है। उसके आधार पर वर-वधू का आसन परिवर्तन करना सर्वथा विधि-विरुद्ध है, क्योंकि जहाँ वर-वधू का आसन पर बैठने के लिए लिखा वहाँ स्पष्ट रूपेण 'पूर्ववत्' शब्द आया है, जिसका अर्थ है वधू वर के दक्षिण भाग में और वर वधू के वाम भाग में बैठें। इसलिए सप्तपदी के बाद वर-वधू का आसन नहीं बदलना चाहिए।

अब रही लाजा-होमवाली परिक्रमाओं की बात। सो केवल लाजा-होम की परिक्रमाओं में ही क्या, अपितु जब भी वर-वधू परिक्रमा करेंगे सर्वत्र वर आगे और वधू पीछे होगी।

पाणिग्रहण-विधि का आरम्भ मधुपर्क के पश्चात् अग्न्याधान से आरम्भ होकर सप्तपदी के पश्चात् सार्वजनिक आशीर्वाद के साथ समाप्त होता है। सप्तपदी पहली सारी क्रिया का उपसंहार है। वहाँ प्रत्येक पद के साथ अनुव्रता शब्द आता है जो स्पष्ट रूप से वधू को वर के पीछे चलने का आदेश देता है। वर वधू के कन्धे पर हाथ रखकर प्रत्येक पद के साथ यही कहता है कि जैसे यहाँ विवाह-संस्कार में तुमने मेरा अनुवर्तन किया है इसी प्रकार भविष्य में भी अनुवर्तिनी रहना।

हो सकता है कुछ सज्जन उपर्युक्त युक्ति से सन्तुष्ट न हों। उनकी सेवा में निवेदन है कि वर-वधू की लाजा-होमकालीन स्थिति और उसके पश्चात् परिक्रमा का आदेश, इन पर ध्यान दीजिये। लाजा-होम के समय वधू वर के दक्षिण भाग में पूर्वाभिमुख और वर वधू के वाम भाग में पूर्वाभिमुख खड़ा रहता है। अब लाजा-होम के पश्चात् दोनों प्रदक्षिणा करेंगे। यहाँ केवल ऋषि-वचन इतना ही है कि 'इन मन्त्रों को पढ़ यज्ञकुण्ड की प्रदक्षिणा करके……।' परिक्रमा के लिए स्थान पर ही दोनों को पहले उत्तराभिमुख होना पड़ेगा और फिर परिक्रमा के लिए दोनों एकसाथ चलेंगे। ऐसी दशा में वर अपने-आप ही आगे रहेगा और वधू पीछे। यदि

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

वधू को आगे रखना होता तो इसका भी उल्लेख होता, पर नहीं है। अतः स्पष्ट है कि परिक्रमा करते समय सर्वत्र वर आगे और वधू पीछे रहेगी। रही बात प्रमाण की, सो गोभिल गृह्यसूत्र २।२।२ प्रकरण में प्रदक्षिणा के विषय में लिखते हुए स्पष्ट उल्लेख है कि 'पत्नी पीछे और पति आगे रहकर ही प्रदक्षिणा करें।' प्रवास में होने के कारण ग्रन्थों के मूल प्रमाण नहीं दिये जा सके, इसके लिए श्री मन्त्री जी और पाठक क्षमा करें।

लाजा-होम की परिक्रमा

मास ज्येष्ठ सं० २०१५ वि० के 'सार्वदेशिक' पत्र में प्रकाशित मेरे एक लेख पर श्री रामावतार सिंह जी आर्यसमाज मगरहा (मिर्जापुर) ने आपत्ति करते हुए लिखा है कि 'मेरी राय में लाजा-होम की परिक्रमाओं में वधू आगे और वर पीछे रहना चाहिये।' आपने प्रमाणों में संस्कारचन्द्रिका और पं० बुद्धदेव जी मीरपुरी-कृत संस्कारविधि-भाष्य प्रस्तुत किये हैं और लिखा है कि मेरी राय में ये दोनों ग्रन्थ माननीय हैं और बहुत दिन भी हो चुके हैं। आपका यह लेख सार्वदेशिक पत्र के मास भाद्रपद सं० २०१५ वि० के अंक में प्रकाशित हुआ है। मैं श्री रामावतार सिंह जी की उक्त आपत्ति के निवारणार्थ ही ये पंक्तियाँ सार्वदेशिक पत्र के पाठकों की सेवा में प्रस्तुत कर रहा हूँ।

श्रीमन्! संस्कारचन्द्रिका और पं० बुद्धदेव जी मीरपुरीकृत संस्कारविधि-भाष्य आर्यसमाज के सिद्धान्त-ग्रन्थ नहीं हैं। आप भले ही प्रमाण मानें, पर उक्त दोनों ग्रन्थ आर्यसमाज के सिद्धान्त-ग्रन्थों के रूप में हमें मान्य नहीं हैं। आर्यसमाज की सैद्धान्तिक प्रामाणिकता के लिए जिन-जिन ग्रन्थों को सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा अपनी धर्मार्य सभा के विद्वानों से निर्णय कराकर मान्य घोषित कर देती है, उन-उन ग्रन्थों को ही हम प्रमाण मानते हैं, अन्यों को नहीं, चाहे वे किसी के लिखे और कितने ही पुराने क्यों न हों। दूसरे, जो टीका ग्रन्थ-मूल के विरुद्ध हो वह कभी प्रमाण नहीं हो सकता। तीसरे, किसी ग्रन्थ को छपे बहुत दिन होने से उसे प्रमाण नहीं माना जा सकता। आपके इस न्याय से तो न जाने कितने और किस-किस प्रकार के ग्रन्थ प्रमाण-कोटि में आ जायेंगे। इसलिए ऐसे समस्त ग्रन्थों का प्रमाण वहीं तक मान्य है जहाँ तक उनका ऋषिकृत ग्रन्थों और आर्यसमाज के साथ सैद्धान्तिक विरोध न हो, इसके विपरीत नहीं। इस परिक्रमा वाले स्थल पर दोनों ही ग्रन्थों का संस्कारविधि के मूल लेख के साथ विरोध होने से इनका लेख प्रमाण नहीं हो सकता।

एक बात आपने भी संस्कारचन्द्रिका की देखादेखी बड़ी अद्भुत लिख दी है

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

कि 'जब वर आगे रहेगा तब (वधू की) रक्षा नहीं कर सकता।' बन्धुवर ! रक्षा आगे होकर ही की जाती है, पीछे रहकर नहीं। लोक में प्रतिदिन देखने में भी यही आता है कि रक्षक आगे और रक्ष्य पीछे रहता है। यही समीचीन और बुद्धि-संगत भी है। इसलिए संस्कारविधि मूल के आधार पर परिक्रमा करते समय वर आगे, वधू उसके पीछे और कलशवाहक तथा दण्डपुरुष वधू के पीछे चलें, यही युक्तियुक्त और शास्त्रानुकूल है। आप संस्कारविधि के शिलारोहण और लाजा-होम-परिक्रमा के अवसर पर वर-वधू की स्थितिविषयक लेख को ध्यानपूर्वक कई वार पढ़िए और विचारिए, आपका यह भ्रम स्वयमेव निवृत्त हो जायेगा।

प्रमाण-भाग पर विचार

चारों वेदों में कहीं पर भी ऐसा लेख नहीं है कि "लाजा-होम की परिक्रमाओं में वधू आगे और वर पीछे रहे"। हाँ "वर वधू के आगे और वधू वर के पीछे चले" ऐसा वर्णन तो अनेक मन्त्रों में आता है, यथा—

भगो राजा पुर एतु प्रजानन्। अथर्व० १४। १। ५९॥
भगस्त्वेतो नयतु हस्तगृह्य। अथर्व० १४। १। २०॥
अग्निरासीत् पुरोगवः। ऋग्वेद १०। ८५। ८॥

अर्थ—(राजा) विद्यादि गुणों से शोभायमान (भगः) ऐश्वर्यवान् वर (पुरः) वधू के आगे (एतु) चले। हे वधू ! (त्वा) तुझे (भगः) भजनीय सेवनीय वर (इतः) यहाँ से (हस्तगृह्य) हाथ पकड़कर (नयतु) ले जावे। (अग्निः) विद्या गुणों से प्रसिद्ध वर सदा से (पुरोगवः आसीत्) वधू के आगे चलता आया है।

ये मन्त्र अथर्व और ऋक् के विवाह-प्रकरणों के हैं। इन मन्त्रों में भग तथा अग्नि शब्द वर के लिए आये हैं। पुरः एतु, नयतु, हस्तगृह्य और पुरोगवः, ये प्रयोग निश्चित ही वर का वधू के आगे चलने का विधान करते हैं। अथर्ववेद के चौदहवें काण्ड का प्रथम सूक्त विवाहविषयक है। इस सूक्त के मन्त्र ४२ में वधू को वर के पीछे चलने का उपदेश दिया गया है कि 'पत्युरनुव्रता भूत्वा सं नह्यस्वामृताय कम्' हे वधू ! पति के पीछे चलकर अर्थात् अनुवर्तिनी होकर अमृत को प्राप्त करने के लिए कटिबद्ध हो जा। इस प्रकार वेद में वर का वधू के आगे चलने और वधू का वर के पीछे चलने का स्पष्ट विधान है।

बहुत-से सज्जन ऋग्वेद १०। ८५। २८ तथा अथर्ववेद १४। २। १ 'ओ३म् तुभ्यमग्रे पर्यवहन्' इस मन्त्र का ऐसा अर्थ लेते हैं कि "वधू आगे और वर पीछे रहे"। उक्त मन्त्र में जो अग्रे शब्द है, उसे न समझकर ही प्रायः लोग उपर्युक्त भाव निकालते हैं। अथर्ववेद का० १४ सू० २ मन्त्र ३२ "देवा अग्रे न्यपद्यन्त" इस मन्त्र के भाष्य में महर्षि दयानन्द सरस्वती जी महाराज 'अग्रे' शब्द का अर्थ 'प्रथम' करते हैं। ओ३म् तुभ्यमग्रे० इस मन्त्र पर प्राचीन और नवीन अनेक

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

विद्वानों का भाष्य मिलता है। वे लिखते हैं—(१) गन्धर्वा हे अग्ने तुभ्यमग्रे पर्यवहन् प्रायच्छन्निन्त्यर्थः—सायणाचार्यः। (२) अग्रे पूर्वं जन्मदिनादारभ्य।—जयरामः (३) अग्रे पूर्वं जन्मदिनादारभ्य।—गदाधरः। (४) हे यज्ञाग्नि! पहिले कन्या को विद्वान् याज्ञिक तेरी परिक्रमा कराते हैं। जयदेव शर्मा विद्यालंकार। हे ज्ञानवान् परमेश्वर और आचार्य! तेरे समक्ष हम युवक लोग··।—अथर्ववेदीय मन्त्र का जयदेवभाष्य।

महर्षि दयानन्दादि उपर्युक्त पाँचों विद्वानों ने 'अग्रे' शब्द का अर्थ प्रथम, पहिले, जन्मदिन से लेकर तथा समक्ष किया है, अतः अग्रे शब्द का अर्थ "कन्या आगे चले" यह सर्वथा अशुद्ध और अग्राह्य है।

अब रहे गोभिलादि गृह्यसूत्रों के वचन। जिन सूत्रों को आपने वधू आगे चलने के पक्ष में सामश्रमी-भाष्य के आधार पर प्रस्तुत किया है, वास्तव में वे सूत्र तो वधू को पीछे और वर को वधू के आगे चलने का विधान करते हैं। यथा—हुत्वोपोत्तिष्ठतः (२।२।१) अनुपृष्ठं पतिः परिक्रम्य दक्षिणत उदङ्मुखोऽवतिष्ठते वध्वञ्जलिं गृहीत्वा (२।२।२) हुते पतिर्यंथेतं परिक्रम्य प्रदक्षिणमग्निं परिणयति (२।२।८)।

अर्थात् विवाह का प्रधान होम करके वर-वधू खड़े हो जावें। पश्चात् (गोभिल गृह्यसूत्रानुसार लाजा-होम के लिए) वर वधू के पीछे से घूमकर दक्षिण भाग में आ वधू की हस्तांजलि पकड़कर उत्तराभिमुख खड़ा रहे। (इसी अवस्था में) लाजा-होम की समाप्ति पर वर जिस प्रकार वधू के पृष्ठदेश से दक्षिण भाग में आया था, पुनः उसी प्रकार पीछे से वधू के उत्तर भाग में जाकर वधू को अपने पीछे चलाता हुआ अग्नि की प्रदक्षिणा करे। यह तो हुआ गोभिलीय सूत्रों का भावार्थ। अब जरा सूत्र २।२।८ पर सत्यव्रत सामश्रमी से प्राचीन चन्द्रकान्त-भाष्य भी देखिये—हुते पतिः परिव्रज्य पुनरागत्य। कथं पुनरागन्तव्यम्? यथेतं यथा येन प्रकारेण पत्नीपृष्ठदेशेन इतं गतं गमनं कृतं पत्नी दक्षिणस्यां, तथैव पत्नीपृष्ठदेशेन पुनरागन्तव्यमित्यर्थः तदेवमागत्य प्रदक्षिण यथा भवति तथा पत्नी परिणयति परि सर्वतो भावेन नयति अग्नेः प्रादक्षिण्येन भ्रामयेदित्येतत्।

संस्कृतभाष्य का अर्थ वही है जो हमने ऊपर हिन्दी में सूत्रार्थ लिखा है। खादिर गृह्यसूत्र में भी परिक्रमाओं का ठीक ऐसा ही विधान है। अतः लाजा-होम की परिक्रमाओं में वर का आगे और वधू का पीछे चलना संस्कारविधि के अनुकूल तथा सर्वशास्त्रसम्मत है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

लाजाहोम की परिक्रमाओं में वर आगे और वधू पीछे चले

मैंने मास अक्टूबर के 'सार्वदेशिक' पत्र में उपर्युक्त आशय का एक लेख प्रकाशित कराया था। उस लेख और फेरों के समय वर की वधू के उत्तर भाग में स्थिति और उसके आगे परिक्रमा के आदेश के सिवा अन्य विधि-वचन का अभाव आदि बातों पर तनिक भी विचार न करके केवल लेख का उत्तर देने की भावना से प्रेरित होकर श्री रामअवतार जी मन्त्री आर्यसमाज मगरहा ने जनवरी मास के सार्वदेशिक पत्र में उसका उत्तर प्रकाशित कराया है, जो संस्कारविधि आदि समस्त कर्मकाण्ड-ग्रन्थों के विरुद्ध है। प्रस्तुत लेख उसी के समाधानार्थ पाठकों की सेवा में उपस्थित कर रहा हूँ। अस्तु !

श्रीरामअवतार जी ! हमारे विचार का मुख्य आधार महर्षि दयानन्द जी महाराजकृत संस्कारविधि ग्रन्थ है। इसलिए संस्कारों के विषय में जो कुछ वह ग्रन्थ कहता है वह सब सत्य और अन्य ग्रन्थ जो बात इसके अनुकूल कहें वह ग्राह्य और शेष सब अग्राह्य समझें।

संस्कारविधि ११वें संस्करण के पृ० १४१ पर शिलारोहण के पश्चात् लिखा है कि, तत्पश्चात् वधू-वर कुण्ड के समीप आके पूर्वाभिमुख दोनों खड़े रहें, और यहाँ वधू दक्षिण ओर रहके अपनी हस्ताञ्जली वर की हस्ताञ्जली पर रखे। इतना ध्यान रहे इस अवसर पर वर वधू के उत्तर भाग में और वधू वर के दक्षिण भाग में खड़ी है। इसी अवस्था में लाजाहोम के अनन्तर वर-वधू यज्ञाग्नि की परिक्रमा करते हैं। यहाँ वधू आगे रहे ऐसा लेख सं० विधि और किसी भी गृह्यसूत्र में नहीं है, जिसके आधार पर फेरों के समय वधू आगे वर पीछे रहे। अपितु उपर्युक्त स्थिति में परिक्रमा करते समय स्वयमेव वर आगे रहेगा, क्योंकि परिक्रमा करने के लिए वर-वधू जो अब तक पूर्वाभिमुख खड़े हैं, उन्हें एक साथ उत्तराभिमुख होना पड़ेगा, और उत्तराभिमुख होते ही वर स्वयमेव आगे हो जाता है। संस्कारविधि और सब गृह्य-सूत्रों का यही आशय है कि परिक्रमा करते समय वर आगे और वधू पीछे रहे। प्रदक्षिणा से ठीक पूर्व मन्त्रब्राह्मण का "कन्यला पितृभ्यः' मन्त्र संस्कारविधि में लिखा ही इसलिए गया है कि वर आगे रहे, क्योंकि उक्त मन्त्र वर के आगे रहने का ही विधान करता है। प्रदक्षिणा से पूर्व संस्कारविधि में ऐसा लिखा है कि 'ओ३म् तुभ्यमग्रे०" और 'कन्यला पितृभ्यः' इन मन्त्रों को पढ़कर यज्ञकुण्ड की प्रदक्षिणा करके··· (पृ० १५२) मन्त्रब्राह्मण के 'ओ३म् कन्यला पितृभ्यः' इस मन्त्र के विनियोगवचन में लिखा है कि परिक्रमा के समय वर वधू को अपने पीछे चलावे और वर आगे चले। इसलिए वर-वधू की

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

तत्कालीन स्थिति और संस्कारविधि के उपर्युक्त लेख से सुतरांसिद्ध है कि लाजा-होम की परिक्रमाओं में वर आगे और वधू पीछे रहे।

अब मैं संस्कारविधि की उपर्युक्त क्रिया के पक्ष में मन्त्रब्राह्मणादि ग्रन्थों के प्रमाण प्रस्तुत करता हूँ। जरा ध्यानपूर्वक पढ़िए और शास्त्र के इस सत्य सिद्धान्त को स्वीकार कर अपने असत्याग्रह को छोड़ दीजिये।

'ओ३म् कन्यला पितृभ्यः' इतिकन्यलेत्यग्नि प्रणयने विनियुक्तः। सूत्रितं च (खा० गृ०सू० १।१३।२४) हुते तेनैव गत्वा, प्रदक्षिणमग्निं परिणयेत 'कन्यला-पितृभ्यः' इति इयं नारीति हुते येनैव प्रकारेण पाणिगृह्णन्नुपृष्ठमुत्तरतो गत्वा पाणिगृह्णन्नेव प्रदक्षिणी कुर्वीत। येन वधूमनुगमयेदित्यर्थः। —मन्त्र ब्रा० १।२।५

अर्थात् लाजाहोम हो चुकने पर जिस प्रकार वर इस विधि के सम्पन्न कराने के लिए वधू के उत्तर भाग से वधू के पृष्ठदेश से होकर उसके दक्षिण भाग में आया था, अब उसी प्रकार से वधू के पृष्ठदेश से होकर उत्तर भाग में जाकर वधू का हाथ पकड़े हुए अग्नि की प्रदक्षिणा करे (येन) जिससे (वधूम्) वधू को (अनु) अपने पीछे (गमयेत्) चलावे।

मन्त्रब्राह्मण, गोभिलगृह्यसूत्र और खादिर गृह्यसूत्रानुसार शिलारोहण और लाजाहोम ये दोनों क्रियाएँ वर वधू के दक्षिण भाग में उत्तराभिमुख खड़ा रहकर सम्पन्न कराता है। इसलिए फेरों में वर आगे रखने के लिए ही यह विधान किया गया है कि लाजाहोम के पश्चात् वर वधू के पीछे से होकर उसके उत्तर भाग में आकर फिर प्रदक्षिणा करे। इस प्रकार ठीक संस्कारविधि के उपर्युक्त विधान की ही पुष्टि करते हुए मन्त्रब्राह्मण ने इस बात को अत्यन्त स्पष्ट कर दिया है कि लाजाहोम की परिक्रमाओं में वर आगे और वधू पीछे रहे। इसी ब्राह्मण के एक अन्य स्थल पर भी ऐसा ही वर्णन आता है कि—

ओ३म् प्रमेपतियानः पन्थाः कल्पतां शिवा अरिष्टा पतिलोकं गमेयम्।

—मं० ब्रा० १।१। ८

सा० भा०—पतियानः यात्यत्रेति यानोमार्गः। पतिर्येन मार्गेण याति स पतियानः। तादृशः पन्था मार्गो मह्यं कल्पतां संभवत्वित्यर्थं मार्गं प्रार्थनप्रयोजन-माह, अहं च तेनमार्गेण शिवा मंगला अशुभरहिता अरिष्टा अहिंसिता च सति। पतिलोकं लोक्यत इति लोकः प्रदेशस्तं पतिनिवासप्रदेशं गमेयम्। अर्थात्—मेरा पति जिस मार्ग से चल रहा है वही मार्ग मेरा हो। दूसरे शब्दों में वधू यों कहती है कि मेरा पति मेरे आगे और मैं उसके पीछे चलूँ। इस प्रकार पति के मार्ग पर उसके पीछे-पीछे चलती हुई सब विघ्न-बाधाओं और हिंसादि दोषों से रहित होकर पति के निवासस्थान को प्राप्त होऊँ।

इस ब्राह्मण-वचन में वधू स्वयं यह कामना करती है कि मेरा पति मेरे आगे चले और मैं उसके पीछे चलूँ, तो बतलाइए आप बलात् ठोक-पीटकर उसे पति के

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

आगे किस विधान के आधार पर चलाना चाहते हैं ?

हो सकता है आप गोभिलगृह्यसूत्र का नाम लें, पर मेरे प्यारे मन्त्री जी, गोभिल भी आपका समर्थन नहीं करता, अपितु गोभिल तो डंके की चोट वही बात कहता है जो संस्कारविधि के समर्थन में मैं कह रहा हूँ। मैंने अपने पिछले लेख में गोभिल का आपेक्षित प्रकरण श्रीचन्द्रकान्तभाष्य-सहित लिखकर यह सिद्ध किया था कि गोभिलगृह्यसूत्र के अनुसार लाजाहोम की प्रत्येक परिक्रमा में वर आगे और वधू पीछे रहेगी। मैं पाठकों और आपकी जानकारी के लिए इस बार पुनः उस प्रकरण को अधिक विस्तारपूर्वक प्राचीनतम भट्टनारायणवृत्ति-सहित लिख रहा हूँ। गोभिलगृह्यसूत्र के दूसरे प्रपाठक की दूसरी कण्डिका का आरम्भ शिलारोहण की तैयारी से होता है यथा—हुत्वोपोत्तिष्ठतः।२।२।१॥

भट्टनारायणवृत्तिः—हुत्वा अनन्तरमेव उत्तिष्ठतः। उपेत संहत हस्ताविति दम्पतीतिशेषः। अर्थात् व्याहृति होम के पश्चात् वर-वधू एक-दूसरे का हाथ पकड़े हुए अपने-अपने आसनों से खड़े होवें।

अनुपृष्ठं पतिः परिक्रम्य दक्षिणत उदङ्मुखोऽवतिष्ठते वध्वञ्जलिं गृहीत्वा। —।२।२।२

भ० ना० वृ०—अनुपृष्ठ अनुपश्चिमेनबध्वाः। पतिः परिक्रम्य गत्वा। दक्षिणत उदङ्मुखोऽवतिष्ठते इत्युक्तार्थम्। किं कृत्वाऽवतिष्ठते ? वध्वा अञ्जलिं गृहीत्वा स्वेनाञ्जलिना।

अर्थात् पति पत्नी के पृष्ठ भाग से होकर वधू के दक्षिण ओर जा अपनी अंजली से वधू की अंजली पकड़े हुए उत्तराभिमुख खड़ा रहे और—

पूर्वा माता लाजानादाय भ्राता वा वधूमाक्रामयेदश्मानं दक्षिणेन प्रपदेन। —२।२।३

अर्थात्—वधू की माता या सहोदर भाई लाजाओं को बाएँ हाथ में लेकर दाएँ हाथ से वधू का दक्षिण पैर शिला पर रखवावे और उस समय—

पाणिग्रहो जपति "इममश्मानमारोहेति"(२।२।४)। वर 'इममश्मानमारोह' इस मन्त्र को बोले। पश्चात्—

सकृत संग्रहीतं लाजानामञ्जलिं भ्राता वध्वञ्जलावावपति—।२।२।५

वधू का भाई एक बार खील लेकर वधू की अञ्जली में डाले। (संस्कारविधि के अनुसार दो बार)। और—

तं सोपस्तीर्णाभिघारितमग्नौ जुहोत्यविच्छिन्दत्यञ्जलिम् "इयं नार्युपब्रूते" इति—।२।२।६

"अर्यमणं नु देवं पूषणमित्युत्तरयोः" ।—२।२।७

वधू अपनी हस्ताञ्जली को वर की हस्ताञ्जली से अलग न करते हुए सूत्र ६ तथा ७ निर्दिष्ट मन्त्रों से तीन लाजाहोम करे। ध्यान रहे गोभिल के मतानुसार

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

शिलारोहण और लाजाहोम के समय वर वधू के दक्षिण भाग में उत्तराभिमुख खड़ा है। अब आठवाँ सूत्र देखिये। इस सूत्र को ठीक समझने के लिए दूसरे सूत्र को बराबर ध्यान में रखना चाहिए, क्योंकि सूत्र दो तो वर को वधू के पीछे से उसके दक्षिण भाग में लाया है और यह सूत्र पुनः वर को वधू के पीछे से उसके उत्तर भाग में ले जावेगा और परिक्रमा होगी, अस्तु— हुते पतिर्यथेतं परिव्रज्य प्रदक्षिणमग्निं परिणयति मन्त्रवान् वा ब्राह्मणः 'कन्यला पितृभ्यः" इति २।२।८ भ० ना० वृत्तिः—हुते लाजाञ्जलौ पतिः परिव्रज्य। कथम्? यथेतं यथा येन प्रकारेण इतं गतं गमनं कृतं तथा बध्वाः पश्चिमेनेति। प्रदक्षिणमग्निं वधूं परिणयति। परि सर्वतोभावं सर्वतो नयेत्। अग्नेः प्रादक्षिण्येन भ्रामयतीत्यर्थः मन्त्रवान् गुणवान् ब्राह्मणो वधूं परिणयति "कन्यला पितृभ्यः" इत्यनेन मन्त्रेण। अञ्जलि विमुञ्चन्।

चन्द्रकान्तभाष्य—हुतेपतिः परिव्रज्य पुनरागत्य। कथं पुनरागन्तव्यम्? यथेतं यथा येन प्रकारेण पत्नीपृष्ठदेशेन इतं गमनं कृतं पत्नी दक्षिणस्यां तथैव पत्नीपृष्ठदेशेन पुनरागन्तव्यमित्यर्थः। तदेवमागत्य प्रदक्षिणं यथा भवति तथा पत्नीं परिणयति। सर्वतोभावेन नयति अग्नेः प्रादक्षिण्येन भ्रामयेदित्येतत्।

मृदुला व्याख्या—हुतेबध्वा लाजाहोमे कृते पतिर्यथेतं यथाऽऽगतं (यथा बध्वाऽनुपृष्ठमितमागमनं कृतं पत्नी दक्षिणस्यां तथैव)परिक्रम्य पुनरागम्य प्रदक्षिणं यथा भवति तथा पत्नीमग्निं परिणयति परि सर्वतोभावेन नयेत् अग्निप्रादक्षिण्येन भ्रामयेदित्यर्थः कस्यांचिदापदि पत्युरसामर्थ्येऽन्योवामन्त्रवान् अधीत वेदो ब्राह्मणः परिणयति।

(इस सूत्र में दो बातें कही गई हैं, एक तो वर का वधू के दक्षिण भाग से उसके उत्तर भाग में जाना और दूसरी बात वधू को यज्ञाग्नि की प्रदक्षिणा कराना)

उपर्युक्त तीनों भाष्यों का एकत्र आर्यभाषार्थ—अब तक सूत्र दो के अनुसार वर वधू के दक्षिण भाग में उत्तराभिमुख खड़ा है। अब लाजाहोम की समाप्ति पर जिस प्रकार शिलारोहण और लाजाहोम से पूर्व सूत्र दो के अनुसार वर वधू के पीछे से होकर उसके दक्षिण में आया था, उसी प्रकार पत्नी के पृष्ठ-भाग से होकर उसके उत्तर भाग में आकर स्वयं आगे रहते हुए पत्नी को प्रदक्षिणा करावे। किसी आपत्काल में यह क्रिया वेदज्ञ ब्राह्मण करावे। उल्लिखित तीनों भाष्य पढ़कर प्रत्येक विज्ञ पाठक समझ गया होगा कि गोभिल २।२।८ तो लाजा-होम की परिक्रमाओं में वर को आगे और वधू को पीछे चलने का विधान करता है। अब जरा श्री सत्यव्रत जी सामश्रमी का भाष्य देखिए, जिसे ठीक प्रकार से न समझकर अनेक जन बहक गये हैं।

"हुतेलाजाहोमे सम्पन्ने अनन्तरं मन्त्रवान् अधीतवेदो ब्राह्मणः पतिः यथा येन प्रकारेण पत्नीपृष्ठदेशेन इतं गतं तथैव अग्निं प्रदक्षिणा यथा स्यात् तथा

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

परिव्रज्य प्रत्यागत्य 'कन्यला पितृभ्यः पतिलोकंयतीयमप दीक्षामयष्ट। कन्या उत त्वया वयं धारा उदन्या इवातिगाहेमहि द्विषः" ॥५॥ (मन्त्र ब्राह्मण १।२।५ इति अनेन मन्त्रेण परिणयति तां कन्यामितिशेषः)

आर्यभाषार्थ—लाजाहोम सम्पन्न होने के पश्चात् अधीतवेद ब्राह्मण वर ने जिस प्रकार से पत्नी के पृष्ठदेश से (उसके दक्षिण भाग में आने के लिए) गमन किया था, उसी प्रकार इसके पृष्ठदेश से उसके उत्तर भाग में आवे जिससे आते समय अग्नि उसकेदक्षिण हाथ को रहे। इस प्रकार आकर 'कन्यला पितृभ्यः' इस मन्त्र को बोलकर उस कन्या को प्रदक्षिणा करावे। यहाँ भी परिक्रमा से पूर्व वर का वधू के उत्तर भाग में आना सूचित करता है कि परिक्रमा के समय वर आगे और वधू पीछे रहे।

सत्यव्रत जी के भाष्य को आधार मानकर यह आपकी अभिमत उलटी गंगा ठाकुर उदयनारायण सिंह मर्ला ने गहाई है, जिन्होंने सत्यव्रत जी के भाष्य का हिन्दी अनुवाद छपाया था। इन्होंने खादिर गृह्यसूत्र के अनुवाद में भी ऐसा ही घोटाला किया है। उनके अनुवाद के अनुसार तो सूत्र का मूलपाठ यह नहीं हो सकता, और सूत्र के मूलपाठ तथा उल्लिखित चारों भाष्यों के अनुसार तीन काल में भी ठाकुर उदयनारायणजी का अर्थ नहीं बन सकता। इसलिए भी उनका मत दोषयुक्त है, क्योंकि एक तो जहाँ वर का पत्नी के पृष्ठभाग से उसके उत्तर भाग में जाने का विधान है, वहाँ उन्होंने वर के लिए अग्नि की प्रदक्षिणा करने को लिखा है। दूसरे, इस प्रकार प्रथम केवल वर की ही अग्नि-प्रदक्षिणा बनती है वधू की नहीं, और तीसरे, इस प्रकार एक परिक्रमा के पश्चात् दूसरे सूत्र का विधान व्यर्थ हो जाता है जो कि लाजाहोम की परिक्रमाओं में समानरूप से लागू होता।

अब खादिर गृह्यसूत्र का एक प्रमाण और लिखकर लेख समाप्त करता हूँ और श्रीरामअवतार जी के शेष लेख पर अपने अगले लेख में विस्तार करूँगा। अस्तु,

हुते तेनैव गत्वा प्रदक्षिणमग्निं परिणयेत् कन्यला पितृभ्यः" इति (खा० गृ० सू०) १।३।२४ रुद्रस्कन्दीयवृत्तिः पाणिं गृह्णन्नुपृष्ठमुत्तरतोगत्वा पाणिं गृह्णन्नेव अग्निं प्रदक्षिणी कुर्वन् वधूमनुगमयेत्।

अर्थात्—वर वधू के पीछे से उसके उत्तर भाग में जाकर प्रदक्षिणा करते हुए (वधूम्) वधू को (अनु) अपने पीछे (गमयेत्) चलावे।

लाजाहोम की परिक्रमाओं में वर आगे और वधू पीछे चले, इसका कितना स्पष्ट वर्णन है! आशा है इससे श्री रामअवतार जी की शंका का समाधान हो जावेगा। हमने संस्कारविधि, मन्त्रब्राह्मण, गोभिलगृह्यसूत्र और खादिर-गृह्यसूत्र इन चार ग्रन्थों के प्रमाणों से सुतरां यह सिद्ध कर दिया है कि लाजाहोम की परिक्रमाओं में वर आगे और वधू पीछे चले।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

लाजाहोम की परिक्रमाओं में वर आगे और वधू पीछे चले

श्री रामअवतार जी! संस्कारचन्द्रिका, संस्कारविधि-भाष्य तथा आर्य-विवाहपद्धति आदि ग्रन्थ संस्कारविधि के व्याख्याग्रन्थ होने के कारण जहाँ तक ये अपने व्याख्येय ग्रन्थ के अनुकूल हैं वहाँ तक तो मान्य, और उसके विपरीत अमान्य समझे जायेंगे। सार्वदेशिक सभा ने आज तक इन ग्रन्थों को कभी भी आर्य जगत् के लिए प्रामाणिक घोषित नहीं किया तो आप्रामाणिक घोषित करने का प्रश्न नहीं उठता। ये ग्रन्थ विभिन्न आर्य विद्वानों ने अपने व्यक्तिगत परिश्रम से अपने ही दायित्व पर लिखे हैं। भूल सभी से सम्भव है, मैं भी भूल कर सकता हूँ, आप भी भूल कर सकते हैं और अन्यों से भी भूल हो सकती है। इसलिए यदि किसी कारणवश भूल से यह लिख दिया गया कि "परिक्रमा करते समय तीन बार वधू आगे और एक बार वर आगे रहे" तो हम इसे सुधार लेवें यही समुचित उपाय है। इसी प्रकार अनेक विवादों को सुलझाने के लिए इस समय सार्वदेशिक धर्मार्य सभा विचार कर रही है। हमें धैर्य के साथ निर्णय की प्रतीक्षा करनी चाहिये।

श्रीमन्! आपने अपने लेख में आधुनिक व्याख्या नाम से सार्वदेशिक के पृ० ५६० पर जो ये पंक्तियाँ लिखी हैं कि पृथिवी सूर्य की वर्ष में यानी तीन अयनों की प्रदक्षिणा कर करती है और सूर्य पृथिवी की एक ही दिन में प्रदक्षिणा कर लेता है" इन्हें पढ़कर आश्चर्य होता है कि एक आर्यसमाज का मन्त्री यह क्या लिख रहा है। मेरे प्यारे बन्धु! उत्तरायण और दक्षिणायन नाम से अयन दो ही हैं तीन नहीं, और न ही सूर्य पृथिवी को परिक्रमा करता है, अपितु पृथिवी २४ घण्टे से कुछ ही कम काल में अपनी कील पर एक बार घूम लेती है, जिससे दिन-रात बनते हैं और वर्षभर में सूर्य के चारों ओर घूमकर सूर्य की एक प्रदक्षिणा पूरी करती है, जिससे ऋतु, अयन और वर्ष बनते हैं। कहिये, कैसी रही आपकी आधुनिक व्याख्या।

लेख के अन्त में भी आपने एक ऐसी ही बात लिख दी है कि "रक्षा करने वाला सदैव पीछे रहता है।" आपके विचार से जयद्रथ-वध के दिन उसकी रक्षा के लिए सारी सेना उसके आगे और उसे सबसे पीछे करना भारी भूल थी, पर वास्तव में जब तक वह सेना के पीछे और सेना उसके आगे रही उसकी रक्षा होती रही, और ज्यों ही आपके रक्षक दल के आगे आया, अर्जुन ने तत्काल सर्वदा के लिए उसका जीवन-दीप बुझा दिया। श्रीकृष्ण ने रुक्मिणी की रक्षा की अपने पीछे रथ में बैठाकर, अर्जुन ने सुभद्रा की रक्षा की अपने पीछे रथ में बैठाके पृथ्वीराज ने संयोगिता की रक्षा की अपने पीछे घोड़े पर बैठाकर। यदि ये तीनों

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

जैन आपके मतानुसार रुक्मिणी, सुभद्रा और संयोगिता को अपने आगे रखकर उनकी रक्षा का यत्न करते तो कभी भी उन्हें न बचा पाते और स्वयं जेल के सींखचों में बन्द होते। भाई मेरे! अब तक तो यही नियम रहा है कि "रक्षक आगे और रक्ष्य पीछे"! सचमुच करना भी ऐसा पड़ेगा यदि किसी की रक्षा करनी है तो; साथ ही आपको यह ध्यान रखना चाहिए कि हम एक शास्त्रीय विषय पर विचार कर रहे हैं, मनघड़न्त कल्पनाओं पर नहीं। इसलिये भी आपकी कल्पित व्याख्याओं का कोई मूल्य नहीं है। अब वेद-मन्त्रों पर विचार कर लें—

श्री रामअवतारजी! आगे आपने मेरे प्रस्तुत मन्त्र में 'अनुव्रता' पद का अर्थ 'अनुकूल वर्तनेहारी' दिया है। ठीक है, इसमें मुझे कोई आपत्ति नहीं, यही सही। इसी मार्ग पर स्वयं भी तो चलिये! अथर्ववेद १४।१ के ५६वें मन्त्र में आया 'अन्वर्तिष्ये' पद अथर्ववेद के १४।१ के ४२वें मन्त्र में आया 'अनुव्रता' पद, ये दोनों सोपसर्ग 'व्रतु वर्तने' इस एक ही धातु के रूप हैं। इसलिए यदि अनुव्रता पद का अर्थ अनुकूल वर्तनेवाली किया जावेगा तो 'अन्वर्तिष्ये' का अर्थ भी 'मैं अपने इन नवागत मित्रों सहित इस वधू के अनुकूल वर्तूंगा' यह होगा, पीछे चलूंगा यह नहीं, क्योंकि बारात में समागत वर के समस्त मित्रों के लिए ही मन्त्र में 'सखिभिः' इस बहुवचन का प्रयोग हुआ है। आपके मतानुसार तो प्रदक्षिणा करते समय लगभग सभी बरातियों को वर के साथ प्रदक्षिणा करने का विधान हो जाता है और ऐसा करना एक उपहासास्पद क्रिया होगी। वास्तव में वर का यह कहना है कि मैं अपने इन नवागत मित्रों सहित इस वधू के अनुकूल वर्तूंगा—यह तो एक आदर्श है, पर वर अपने मित्रों सहित वधू के पीछे चलकर परिक्रमा करे इसमें कौन-सा आदर्श है और कौन-सा विधान? इसलिए बात वही ठीक है जो मैं अपने पिछले लेख में सप्रमाण सिद्ध कर चुका हूँ कि 'लाजाहोम की परिक्रमाओं में वर आगे और वधू पीछे रहे।'

पाणिग्रहण की क्रिया लाजाहोम की परिक्रमाओं के पश्चात् वधू-वर द्वारा दी गई 'भगाय स्वाहा' और 'प्रजापतये स्वाहा' इन आहुतियों के साथ समाप्त होती है। 'गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तम्' से लेकर 'प्रजापतये स्वाहा' तक एक कर्म है और इस सम्पूर्ण कर्म में वर वधू के आगे रहेगा। जैसाकि आपने भी अथर्ववेद १४।१।५९ का जयदेव-भाष्य लिखते हुए 'धाता विपश्चित्पतिमस्यै विवेद भगो राजा पुर एतु प्रजानन्' इस मन्त्रभाग का अर्थ 'ऐश्वर्यवान् चित्त को अनुरंजन में समर्थ ज्ञानी पुरुष कन्या का पाणिग्रहण करने के लिए आगे आवे' यह लिखा है। 'पुर कन्याया अग्रे एतु गच्छतु' इत्यर्थः इण् गतौ, अर्थात् पाणिग्रहण की सम्पूर्ण क्रिया में प्रदक्षिणा करते सयय वर वधू के आगे चले। पाणिग्रहण की क्रिया में पाणिग्रहण के छ मन्त्रों के पश्चात् की एक, और लाजाहोम की तीन, इस प्रकार सब मिलाकर चार प्रदक्षिणा होती हैं। इन सब में उपर्युक्त मन्त्र के आधार पर

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

वर आगे और वधू पीछे रहेगी।

"भगस्त्वेतो नयतु हस्तगृह्य" इस मन्त्र में हस्तगृह्य (हाथ पकड़कर) पद बड़ा मार्के का है, जो स्पष्ट घोषणा कर रहा है कि हाथ पकड़कर ले-जानेवाला हमेशा आगे रहता है और जिसका हाथ पकड़के ले-जाया जाता है वह पीछे होता है। लोक में भी ऐसा ही व्यवहार देखने में आया है कि जब कभी हाथ पकड़के ले-जाने का अवसर स्वस्थ या रुग्णावस्था में भी आता है तो सर्वत्र हाथ पकड़ने-वाला आगे और जिसका हाथ पकड़ा है वह पीछे चल रहा है। सो इस प्रकार पक्षपात और दुराग्रह को छोड़कर विचार करने से यही सिद्ध होता है कि वेद, ब्राह्मण, गृह्यसूत्र और संस्कारविधि इन सबका यही मत है कि "पाणि-ग्रहणस्थ लाजाहोम की परिक्रमाओं में सर्वत्र वर आगे होगा और वधू पीछे रहेगी।"

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

समयपालनता

समय सब द्रव्यों से अधिक मूल्यवान्

कालो अश्वो वहति सप्तरश्मिः सहस्राक्षो अजरो भूरिरेताः।
तमा रोहन्ति कवयो विपश्चितस्तस्य चक्रा भुवनानि विश्वा ।।

—अथर्व० १९।५३।१

(सप्तरश्मि) सात प्रकार की किरणोंवाले सूर्य के समान प्रकाशमान् (सहस्राक्षः) सहस्रों नेत्रवाला अथवा सहस्रों धुरोंवाला (अजरः) बूढ़ा न होनेवाला (भूतिरेताः) बड़े बलवाला (कालः) समयरूपी घोड़ा (वहति) चलता रहता है। (तम्) उसपर (कवयः) ज्ञानवान् (विपश्चितः) बुद्धिमान् लोग (आरोहन्ति) चढ़ते हैं (तस्य) उसके (चक्रा) चक्र (विश्वा) सब (भुवनानि) लोक-लोकान्तर हैं।

वेद ने इस मन्त्र में समय की महिमा का वर्णन किया है। वेद-मन्त्र में काल को अश्व से उपमा दी गई है। समय बड़ी तेजी के साथ भागता चला जाता है। 'आशु गच्छतीति अश्वः' के अनुसार जो तीव्र गति से चलता है वह अश्व होता है। तेज चाल की उपमा घोड़े से दी गई है। वास्तव में घोड़ा बड़ी द्रुतगति से चलना है। वैसे ही समय भी बड़ी तेजी के साथ बीतता चला जाता है। उक्त मन्त्र में काल अर्थात् समय के चार विशेषण गिनाये गये हैं। जिस प्रकार सूर्य सात रंगों के साथ प्रकाशमान् रहता है उसी प्रकार समय भी संसार में प्रकाशमान् है। जिस प्रकार सूर्य की सत्ता संसार में प्रमुख है उसी प्रकार काल (समय) की भी महत्ता संसार में मान्य है। उसके सैकड़ों नेत्र हैं अथवा सैकड़ों धुरे हैं। जैसे नेत्र देखने का काम करते हैं, वैसे काल भी हम सबको देख रहा है। वह सैकड़ों धुरों वाला है। जैसे धुरा के सहारे पहिया चलता है, वैसे ही समय के सहारे संसार चलता है। समय कभी बूढ़ा नहीं होता। वह सदा युवा और नवीन रहता है। काल सदा एकसमान रहता है। वह बड़ी शक्तिवाला है और उसमें बहुत बल पाया जाता है।

ऐसे काल पर बुद्धिमान् लोग ही सवारी करते हैं। वेद-मन्त्र का आशय यह

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

है कि काल का सदुपयोग केवल बुद्धिमान् ही कर सकते हैं, मूर्ख व्यक्ति नहीं। ये सारे लोक-लोकान्तर उस काल के चक्र के समान हैं। कहने का अभिप्राय यह है कि सब लोग जो चक्र के समान घूम रहे हैं वे काल की सीमा के बाहर नहीं हैं अपितु उसके अन्तर्गत हैं।

संसार के सभी कार्य देश और काल की सीमा में बँधकर होते हैं। कोई भी कार्य जब होता है तो वह किसी स्थान पर होता है और किसी समय में होता है। केवल परमात्मा और आत्मा को छोड़कर शेष सभी वस्तुएँ काल के बन्धन में बँधी हुई हैं। इसीलिए अथर्ववेद के ५३वें और ५४वें सूक्त में काल की महिमा का वर्णन किया गया है। दोनों सूक्तों में महत्त्वपूर्ण बातों को निम्न अनुच्छेद में उपस्थित किया गया है।

वर्तमान, भूत और भविष्यत् काल इसी के तीन भेद हैं। चारों दिशाएँ भी इसी के अन्तर्गत आती हैं। आकाश, वायु, पृथिवी, भूत और भविष्यत्, सूर्य, मन, प्राण, तप, श्रेष्ठ कर्म, वेदज्ञान (प्रत्येक सृष्टि के आरम्भ में वेदज्ञान का प्रकट होना) काल में ही स्थित हैं। पृथिवी पर रखे हुए पदार्थ और आकाश में रहनेवाले पदार्थ भी काल में रखे हुए हैं।

मन्त्र में समय के विशेषणों का वर्णन करने के पश्चात् यह बात कही गई है 'तमारोहन्ति कवयो विपश्चितः' अर्थात् केवल ज्ञानवान् और बुद्धिमान् व्यक्ति ही समय की सवारी कर सकते हैं। निर्बुद्धि व्यक्ति इसकी सवारी नहीं कर सकते। जिनका जीवन में कोई उच्च लक्ष्य होता है वही समय का सदुपयोग करते हैं। ऐसे व्यक्ति संसार में विरले होते हैं। संसार में अधिकतर लोग ऐसे हैं जिनका कोई उच्च लक्ष्य नहीं होता। फिर भी सामान्य व्यक्तियों के लिए भी समय का महत्त्व तो होता ही है।

समय बहुत मूल्यवान् वस्तु है। संसार में धन बहुत अमूल्य समझा जाता है। यदि हम परिश्रम करें तो धन को बढ़ा सकते हैं। अधिक परिश्रम करें तो धन को अधिक बढ़ा सकते हैं, परन्तु दिन और रात के चौबीस घण्टों को हम किसी प्रकार भी नहीं बढ़ा सकते। इसका परिणाम यह निकला कि समय धन से भी अधिक मूल्यवान् है। धन यदि नष्ट हो जाये तो उसे हम परिश्रम से दोबारा प्राप्त कर सकते हैं, परन्तु यदि समय एक बार नष्ट हो जाए तो फिर उसका प्राप्त करना असम्भव होता है, अतः समय धन से भी अधिक मूल्यवान् है।

वस्तुतः समय बहुत मूल्यवान् है। जो समय को नष्ट करता है, समय उसे नष्ट कर देता है। जो समय के महत्त्व को समझते हैं वे समय को कभी नष्ट नहीं करते। मुँह से अनुचित निकले हुए शब्द वापस तो नहीं आ सकते, परन्तु व्यक्ति क्षमा-याचना द्वारा दूसरे के मन से रोष और क्षोभ की भावना का निवारण कर सकता है। इसके विपरीत बीता हुआ समय कभी लौटाया नहीं जा सकता। बीता

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

हुआ समय और मुँह से निकले हुए शब्द दोनों ही नहीं लौटाये जा सकते, परन्तु बीता हुआ समय मुँह से निकले हुए शब्दों से भी अधिक महत्त्व रखता है। समय शुभ जीवन और लक्ष्मी का भण्डार होता है। समय का सदुयोग करते हुए ही व्यक्ति अपने जीवन को शुभ बना लेता है। समय का लाभ उठाता हुआ मनुष्य धन कमाता है और लक्ष्मीपति हो जाता है। संसार में हीरे, जवाहरात, मोती और सोने को बहुत मूल्यवान् समझा जाता है, परन्तु समय उससे भी अधिक मूल्यवान् है। व्यक्ति समय का उपयोग करते हुए ही इनको प्राप्त करता है।

जीवन क्षणभंगुर है तो इसका यह अर्थ नहीं है कि समय को नष्ट किया जाए। अपितु इससे तो मनुष्य को यह प्रेरणा लेनी चाहिए कि वह समय का ठीक उपयोग करे, उसे अमूल्य समझकर उसे व्यर्थ न जाने दे। समय का जब ठीक उपयोग किया जाए तो समय तभी बच सकता है।

समयरूपी धन के देने में परमात्मा ने किसी प्रकार का पक्षपात नहीं किया। समयरूप धन सबके लिए समान है। चाहे निर्धन हो, चाहे धनवान्, चाहे पठित हो चाहे मूर्ख, व्यक्ति चाहे किसी भी सम्प्रदाय का हो, समयरूपी धन सबके लिए समान है। सभी के लिए वह समानरूप से सुलभ है। यह सम्पत्ति परमात्मा ने सभी को समानरूप से प्रदान की है। इसके वितरण में किसी प्रकार का भेद-भाव नहीं किया गया है। सभी इसका समान रूप से उपयोग कर सकते हैं।

समय की एक विशेषता और है। जहाँ उसे बढ़ाया नहीं जा सकता वहाँ उसे घटाया भी नहीं जा सकता। धन घट जाता है, परन्तु समय नहीं घट सकता। निर्धन और धनवान् के लिए यह बराबर है।

कुछ लोग अपना अमूल्य समय केशों के सजाने, नये-नये ढंग के कपड़े सिलाने और शृंगार करने में भी नष्ट कर देते हैं। शरीर और वस्त्र की सफाई तो अवश्य करनी चाहिये, साफ-स्वच्छ तो रहना ही चाहिए, परन्तु इसी में ही जीवन की सार्थकता नहीं है।

कुछ लोग हँसी-मजाक और गप्पबाजी में अपना समय नष्ट करते हैं। वे इसे मनोविनोद और मनोविश्राम का साधन समझते हैं। वास्तव में यह भी अमूल्य समय को नष्ट करने और अपनी वाणी को दूषित करने का एक साधन है। मनुष्य को अपना समय अमूल्य समझते हुए गप्पबाजी में व्यर्थ ही नष्ट नहीं करना चाहिये।

अश्लील साहित्य का पढ़ना भी समय-नाश के ही तुल्य है। इन पुस्तकों के पढ़ने से मस्तिष्क को कोई पौष्टिक आहार नहीं मिलता। इसके विपरीत मस्तिष्क में काम-वासना का विष भर जाता है। समय-नाश जो हुआ सो हुआ, जो बुराई पल्ले पड़ी सो अलग। अतः अश्लील साहित्य के पढ़ने से दो प्रकार की हानि होती है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

जिनके जीवन में कोई विशेष लक्ष्य नहीं होता वे रोटी-कपड़े की आवश्यकताओं से निवृत्त होकर ताश, शतरंज और लुड्डो इत्यादि के खेलों द्वारा अपना समय बिताते हैं। यह भी समय का कोई उत्तम उपयोग नहीं है। समय का सदुपयोग तो वही करते हैं जिनके समक्ष कोई महान् लक्ष्य होता है। सामान्य व्यक्ति जब अपनी नित्य की आवश्यकताओं से निवृत्त हो तो मनोरंजन के साधन ढूंढता है। परन्तु देखा गया है कि कुछ इन खेलों के इतनी बुरी तरह से शिकार हो जाते हैं कि वे इन्हीं खेलों में अपना अमूल्य समय नष्ट करने लगते हैं। अन्य कार्यों की अवहेलना करके इन खेलों में व्यस्त रहना समय का नाश करना है। इस समय का सदुपयोग सद्ग्रन्थों के पाठ और अन्य जन-उपयोगी कार्यों में किया जा सकता है, परन्तु यह तभी सम्भव है जब व्यक्ति के सम्मुख उच्च लक्ष्य हो।

कुछ लोग आवश्यकता से अधिक सोते हैं। यह समय का नाश तो है ही, साथ ही शरीर का नाश भी है। आवश्यकता से अधिक सोना अपने स्वास्थ्य को नष्ट करने के तुल्य है। अधिक सोने के कारण मस्तिष्क को विश्राम मिलने के स्थान पर मस्तिष्क थकने लगता है। शरीर में चुस्ती और फुरती के स्थान पर शिथिलता अनुभव होने लगती है।

दुकानदार के यहाँ जब गाहक आते हैं तो सौदा खरीदते समय दुकानदार और ग्राहक में मेल-जोल होता है। दुकानदार गाहक को पहले वस्तु का अधिक मूल्य बताता है। जब गाहक कुछ कम करने के लिए कहता है तो वह दुकानदार कुछ मूल्य कम कर देता है। ग्राहक की सन्तुष्टि नहीं होती। वह चलने लगता है। दुकानदार उसे फिर बुलाता है। वह फिर कुछ मूल्य कम करता है। ग्राहक की फिर सन्तुष्टि नहीं होती। वह फिर जाने लगता है। दुकानदार उसे फिर बुलाता है। कुछ और राशि कम करता है। गाहक की सन्तुष्टि हो जाती है। यह सब-कुछ क्या है ? केवल समय-नाश का दृश्य है। यदि दुकानदार ग्राहक को निश्चित मूल्य बता दे और कह दे कि हमारे यहाँ तो निश्चित मूल्य पर ही वस्तुएँ बिकती हैं तो दोनों समय-नाश से बच जाएँगे।

लोग समय का दुरुपयोग करते हैं, परन्तु वेद ने मूल्यवान् समय के सदुपयोग पर बहुत बल दिया है। वेद ने कहा है—

कस्त उषः कधप्रिये भुजे मर्तो अमर्त्ये।
कं नक्षसे विभावरि॥ —ऋ० १।३०।२०

हे विद्याप्रियजन ! जो यह नाशरहित, कथनप्रिय और विविध जगत् को प्रकाश करनेवाली प्रातःकाल की उषावेला सुखभोग कराने के लिए प्राप्त होती है उसको प्राप्त होकर तू किस मनुष्य को प्राप्त नहीं होता और कौन मनुष्य सुख भोगने के लिए तेरे आश्रय को प्राप्त नहीं होता।

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने इस मन्त्र का भावार्थ इस प्रकार किया है—

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

कौन मनुष्य इस काल की सूक्ष्म गति जो व्यर्थ खोने के अयोग्य है उसको जाने, जो पुरुषार्थ के आरम्भ का आदिसमय प्रातःकाल है उसके निश्चय से प्रातःकाल उठकर जब तक सोने का समय न हो, एक क्षण भी व्यर्थ न खोवें। इस प्रकार समय की सार्थकता को जानते हुए मनुष्य सब काल सुख भोग सकते हैं, किन्तु आलस्य करनेवाले नहीं।

वर्षाभिर्ऋतुनादित्या स्तोमे सप्तदशे स्तुताः।
वैरूपेण विशौजसा हविरिन्द्रे वयो दधुः॥—यजु० २१।२५

हे मनुष्यो! जो जिसमें मेघ वृष्टि करते हैं उस वर्षा प्राप्त होने योग्य ऋतु, अनेक रूपों के होने से जो बल और उस प्रजा के साथ रहनेवाले बारह महीने वा उत्तम कल्प के विद्वान् सत्रहवें स्तुति के योग्य व्यवहार में प्रशंसा किये हुए जीवात्मा में देने योग्य काल के ज्ञान को धारण करते हैं उनको तुम लोग जानकर उपकार करो।

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने इस मन्त्र का भावार्थ इस प्रकार लिखा है—

जो मनुष्य लोग विद्वानों के संग से काल की स्थूल-सूक्ष्म गति को जानके एक क्षण भी व्यर्थ नहीं गँवाते हैं वे नानाविध ऐश्वर्य को प्राप्त होते हैं।

संवत्सरोऽसि परिवत्सरोऽसीदावत्सरोऽसीद्वत्सरोसि वत्सरोऽसि। उषसस्ते कल्पन्तामहोरात्रास्ते कल्पन्तामर्द्धमासास्ते कल्पन्तां मासास्ते कल्पन्तामृतवस्ते कल्पन्ताꣳ संवत्सरस्ते कल्पताम्। प्रेत्याऽएत्यै सं चाञ्च प्र च सारय। सुपर्ण-चिदसि तया देवतयाऽङ्गिरस्वद् ध्रुवः सीद॥ —यजु० २७।४५।

हे विद्वन् जिज्ञासु पुरुष! जिससे तू संवत्सर के तुल्य नियम से वर्तमान है। त्याज्य वर्ष के समान दुराचरण का त्यागी है। निश्चय से अच्छे प्रकार वर्तमान वर्ष के तुल्य है। निश्चित संवत्सर के सदृश है। वर्ष के समान है। इससे तेरे लिए कल्याणकारिणी प्रभातवेला समर्थ हो। तेरे लिए दिन-रात मंगलदायक समर्थ हों। तेरे लिए शुक्ल-पक्ष और कृष्ण-पक्ष समर्थ हों। तेरे लिए चैत्रादि महीने समर्थ हों। तेरे लिए वसन्त आदि ऋतुएँ समर्थ हों। तेरे लिए वर्ष समर्थ हों और तू उत्तम प्राप्ति के लिए सम्यक् प्राप्त हो, और तू अच्छे प्रकार जाने के लिए अपने प्रभाव का विस्तार कर जिस कारण तू सुन्दर रक्षा के साधनों का संचयकर्त्ता है। इससे उस उत्तम गुणयुक्त समयरूपी देवता के साथ सूत्रात्मा प्राणवायु के समान दृढ़, निश्चल, स्थिर हो।

महर्षि दयानन्द ने इस मन्त्र का भावार्थ इस प्रकार किया है—

जो आप्त मनुष्य व्यर्थ काल नहीं, खोते, सुन्दर नियमों से वर्तते हुए कर्त्तव्य-कर्मों को करते, छोड़ने योग्यों को छोड़ते हैं, उनके प्रभातकाल, दिन-रात, पक्ष, महीने, ऋतु सब सुन्दर प्रकार व्यतीत होते हैं। इसलिए उत्तम गति के अर्थ प्रयत्न कर, अच्छे मार्ग से चल शुभ गुणों और सुखों का विस्तार करें। सुन्दर लक्षणों-

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

वाली वाणी वा स्त्री के सहित धर्मग्रहण और अधर्म के त्याग में दृढ़ उत्साही सदा होवें।

वास्तव में जीवन एक संग्राम है। इस संग्राम में वही विजय प्राप्त कर सकता है जो समय का सदुपयोग करता है। जो समय को व्यर्थ गँवाता है वह इस युद्ध में विजयी नहीं हो सकता। व्यक्ति पहले समय को नष्ट करता है और फिर समय व्यक्ति को नष्ट कर देता है। किसी ने क्या सुन्दर कहा है!—

सब वस्तु का मोल है, समय अमूल्य पिछान।
समय व्यर्थ न खोवते, सो जन चतुर सुजान॥

सब वस्तुओं का मूल्य समय है और समय को अमूल्य समझो। जो व्यक्ति चतुर होते हैं वे समय को नष्ट नहीं करते।

सबसे बढ़कर समय है, सभी गुणों की खान।
करे समय का मान जो, वे ही पुरुष महान्॥

समय सबसे बढ़कर है और सभी गुणों की खान है। जो समय का मान करते हैं वे ही महान् पुरुष हैं।

महापुरुष सदा समय का सदुपयोग करते हैं। वे कालज्ञ होते हैं। उन्हें समय की महत्ता का ज्ञान होता है। वे समय का सदुपयोग करके ही महापुरुष कहलाते है। उनके साथी जब सोते रहते हैं तब वे जागकर परिश्रम करते हैं। तभी वे महानता के शिखर पर पहुँच पाए। कई महापुरुषों ने जेल में रहते हुए अनुपम ग्रन्थों की रचना की है। उन्होंने कारावास में रहकर अपने समय का पूरा लाभ उठाया।

जिन्हें समय का सदुपयोग करना होता है उनकी एक नियमित दिनचर्या हुआ करती है। वे उस निश्चित कार्यक्रम के अनुसार चलते हैं। उनका सोना-जागना, खाना-पीना, उठना-बैठना, पढ़ना-विश्राम करना इत्यादि सब-कुछ निश्चित होता है। वे पहले ही सोच लेते हैं कि उन्हें आगे क्या करना है? वे आलस्य को दुत्कार देते हैं और प्रमाद को फटकार देते हैं। जिस कार्य को उन्होंने निश्चित समय पर करना होता है वे उसी समय उस कार्य को करते हैं।

जिन्होंने समय का सदुपयोग करना होता है वे समय को हाथ से नहीं जाने देते। समय को ऐसे गंजे से उपमा दी गई है, जिसके सामने तो बाल हैं, पीछे नहीं हैं। जो इसे आगे के बालों से पकड़ लेते हैं वे इसे वश में कर लेते हैं। जो पीछे से पकड़ना चाहते हैं वे असफल रहते हैं। वे समय का लाभ नहीं उठा सकते।

जीवन में सफलता का रहस्य भी यही है कि निश्चित समय पर निश्चित कर्म किया जाए। जो व्यक्ति निश्चित समय के अनुसार निश्चित कर्म नहीं करते—यदि पढ़ने पर उतरे तो पढ़ते ही रहे, यदि सोने पर आए तो सोते ही रहे, यदि खेलने पर उतरे तो खेलते ही रहे, यदि घूमने-फिरने निकले तो घूमते ही रहे,

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

यदि बातें करने पर उतरे तो बातें ही करते रहे, ऐसे व्यक्ति जीवन में कभी सफल नहीं हो सकते।

विश्व की प्राकृतिक व्यवस्था हमें समय-पालकता का उपदेश देती है। सूर्य की गति, चन्द्रमा की गति, पृथिवी की गति, ऋतुओं का परिवर्तन—ये सभी हमें समय-पालकता और नियमबद्धता की ओर संकेत करते हैं।

दिन हमारे मित्रों के समान आते हैं और हमारे सामने प्रकृति की अमूल्य भेंट लाते हैं। यदि हम उनका सदुपयोग नहीं करते तो वे अपनी भेंट लेकर वापस चले जाते हैं, अतः हमें अपने समय का सदुपयोग करना चाहिए। परमात्मा एक दिन लेकर हमें दूसरा दिन देता है। इस दृष्टि से भी हमें समय का उपयोग करना चाहिए, क्योंकि गया हुआ समय फिर हाथ नहीं आता।

खाई हुई सम्पत्ति, नष्ट हुआ धन, नष्ट हुआ स्वास्थ्य पुनः प्राप्त हो सकते हैं, परंतु खोया हुआ समय प्राप्त नहीं हो सकता। बिछुड़े हुए सम्बन्धी भी फिर मिल सकते हैं, परन्तु गया हुआ समय हाथ नहीं आ सकता।

स्वर्ण-संयोग समय के सदुपयोग के अतिरिक्त और कुछ नहीं। जो व्यक्ति समय का सदुपयोग करते हैं वे वास्तव में स्वर्ण-लाभ प्राप्त करते हैं। जो वर्तमान काल का लाभ उठाते हैं, वही वास्तव में कालज्ञ हैं और वही समय का लाभ उठाते हैं। भूतकाल के अनुभव से मनुष्य को लाभ उठाना चाहिए और भविष्य के लिए कोई लक्ष्य अवश्य होना चाहिए, परन्तु वर्तमान काल में मनुष्य को कर्म करना चाहिए। भविष्य कभी भविष्य के रूप में उपस्थित नहीं होता। वह सदा वर्तमान काल के रूप में प्राप्त होता है। भविष्य क्षण-क्षण में हमें वर्तमान काल के रूप में प्राप्त होता है। अतः जो वर्तमान काल का लाभ उठाता है वह मानो अपने भविष्य का निर्माण करता है। जो वर्तमान काल को नष्ट करता है मानो वह अपने भविष्य का नाश करता है। आज 'पिता' के तुल्य होता है और कल 'पुत्र' के समान होता है। यदि पिता सबल होगा तो पुत्र भी सबल होगा। यदि पिता निर्बल होगा तो पुत्र भी निर्बल होगा। जैसे पुत्र की सबलता और निर्बलता पिता की सबलता और निर्बलता पर आधारित है, वैसे ही कल की सबलता और निर्बलता आज की सबलता और निर्बलता पर आधारित होती है। अतः मनुष्य को वर्तमान का महत्त्व समझना चाहिए।

वर्तमान काल के महत्त्व को समझते हुए व्यक्ति को आज का काम आज ही करना चाहिए, उसे कल पर नहीं डालना चाहिए। मनुष्य-स्वभाव की एक दुर्बलता है कि वह आलस्य और प्रमाद के वशीभूत होकर आज का काम कल पर सरकाता है। यह दुर्बलता वर्तमान काल के महत्त्व को नष्ट करती है। जिसे अनिवार्य रूप से आज करना है उसे आज ही करना चाहिए, कल पर नहीं डालना चाहिए। संस्कृत के कवि ने कहा है—

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

श्वः कार्यमद्य कुर्वीत पूर्वाह्णे चापराह्णिकम् ।
नहि प्रतीक्षते मृत्युः कृतमस्य न वा कृतम् ।।

कल का काम आज और आज का काम प्रातःकाल ही कर ले। मृत्यु इस बात की प्रतीक्षा नहीं करती कि इस पुरुष ने अपना काम पूरा कर लिया है या नहीं। अतः वर्तमान काल में ही समय का सदुपयोग करते हुए निश्चित कार्य को निश्चित समय में करना ही लाभकारी है। प्रमादी व्यक्ति अपने निश्चित कार्य को आगे सरकाते रहते हैं। जिस समय के लिए वे अपना कार्य सरकाते हैं, उस समय कोई और कार्य उपस्थित हो जाता है। परिणामस्वरूप उनके मन में बेचैनी हो जाती है। वे द्विविधा में पड़ जाते हैं। कई बार कोई ऐसी समस्या खड़ी हो जाती है कि वह काम हो ही नहीं पाता। कतई बार काम आगे सरकाते-सरकाते रह ही जाता है। अतः काम को आगे सरकाने की प्रवृत्ति वर्तमान काल का सदुपयोग नहीं होने देती।

जीवन बहुत मूल्यवान् वस्तु है। जिन्हें जीवन के वास्तविक मूल्य का ज्ञान होता, वे समय के महत्त्व को समझते हैं। वे थोड़े-से समय को भी नष्ट नहीं होने देते। वे क्षण-क्षण का उपयोग करते हैं। वे प्रतिदिन थोड़ा-थोड़ा समय निकालकर भी किसी विद्या में निपुणता प्राप्त कर लेते हैं। प्रतिदिन एक घण्टे का अभ्यास करने से व्यक्ति किसी भी कला में पारंगत हो सकता है। अतः थोड़े समय का भी उपयोग करना ही चाहिए।

उपयुक्त समय पर उपयुक्त कार्य बहुत सार्थक और लाभकारी होता है। जो व्यक्ति ठीक समय पर ठीक कर्म करना जानता है और उचित समय पर उचित बात कहनी जानता है वह व्यक्ति यश का भागी बनता है। समयोपयुक्त कार्य का बहुत महत्त्व होता है। संस्कृत के कवियों ने बहुत सुन्दर कहा है—

काले भुञ्जीत मधुरं स्निग्धं पथ्यं हितं मितम् ।
काले ब्रवीत मधुरं प्रियं तथ्यं हितं मितम् ।।

अपने निश्चित समय पर मिठास से भरा हुआ, सरस, परहेज के अनुसार, हितकारी और आवश्यकता के अनुकूल भोजन करे। इसी प्रकार निश्चित समय पर मधुर, प्रिय, सत्य, हितकारी और उपयुक्त वचनों का उच्चारण करे।

लेन-देन भी उपयुक्त समय पर प्रभावशाली होता है। उपयुक्त समय निकल जाने पर उनका रस नष्ट हो जाता है—

आदानस्य प्रदानस्य कर्त्तव्यस्य च कर्मणः ।
क्षिप्रमक्रियमाणस्य कालः पिबति तद्रसम् ।।

लेन-देन और करने योग्य काम आदि यदि ठीक समय पर जल्दी न कर लिये जाएँ तो देरी करने से उनका आनन्द नष्ट हो जाता है। उपयुक्त समय पर उपयुक्त काम सजते हैं।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

निर्वाणदीपे किमु तैलदानं, चौरे गते वा किमु सावधानम्।
वयोगते किं वनितावि लासः, पयो गते किं खलु सेतुबन्धः ॥

दीपक के बुझ जाने पर तेल डालने से क्या, चोर के चले जाने पर सावधान होने से क्या, यौवन के बीत जाने पर स्त्री के साथ सुखोपभोग क्या, पानी चले जाने के पश्चात् पुल बाँधने से क्या ?

नीकी पै फीकी लगै बिनु अवसर की बात ।
जैसे बरनत युद्ध में रसिंगार न सुहात ॥

जो बात बिना अवसर के कही जाती है वह अच्छी होने पर भी फीकी लगती है, जैसे युद्ध में यदि शृंगार रस की बात कही जाए तो अच्छी नहीं लगती।

वक्त पर काफ़ी है क़तरा अब्रे-खुशअंजाम का ।
जल चुका जब खेत मेंह बरसा तो फिर किस काम का ॥

वह बादल जिसकी वर्षा का सुन्दर परिणाम हो समय पर उसकी बूंद पर्याप्त होती है। जब खेत जल चुका तो फिर मेंह बरसने का क्या लाभ ?

जीवन में प्रत्येक कार्य का कोई-न-कोई उपयुक्त समय होता है। सामान्य कार्यों को ही लीजिए। सोने, प्रातःकाल उठने, शौच से निवृत्त होने, दाँत साफ करने, हजामत, स्नान, ईश्वरभक्ति, प्रातराश, आजीविका के लिए कार्य, भोजन, विश्राम इत्यादि सभी कार्य अपने-अपने समय पर शोभायमान होते हैं। अपने समय पर ये कार्य न किए जाएँ तो विचित्र प्रतीत होते हैं। इसी प्रकार जीवन के बड़े-बड़े कामों का भी अपना निश्चित काल होता है। यदि निश्चित काल में वे काम न किए जाएँ तो विचित्र लगते हैं और कई बार हँसी का कारण बनते हैं। बच्चा माँ की गोद में एक निश्चित अवधि तक शोभा देता है। बच्चा सारा दिन खेलता है, परन्तु सारा दिन खेलने की भी कोई अवधि होती है। बच्चा पढ़ने लगता है, परन्तु यदि कोई अधेड़ अवस्था में अथवा वृद्धावस्था में विद्यार्थी की भाँति पढ़ने लगे तो बहुत विचित्र लगता है। विवाह युवावस्था में ही शोभा देता है। कोई वृद्धावस्था में विवाह करे तो बहुत विचित्र लगता है और उपहास का विषय भी बनता है। इस प्रकार छोटे-बड़े सभी कार्य अपने निश्चित समय पर ही सुशोभित होते हैं।

भोजन, सब्जियाँ और अन्य खाद्य पदार्थ भी अग्नि पर उपयुक्त, उचित और और आवश्यक समय की अपेक्षा रखते हैं। यदि उपयुक्त समय से पहले अग्नि से उतार लिये जाएँ तो पदार्थ के तैयार होने में कमी रह जाती है; यदि आवश्यकता से अधिक समय तक रहे तो भी पदार्थ स्वादहीन और अभक्ष्य बन जाता है। एक रेलचालक यदि गाड़ी चलाते हुए समय का ध्यान नहीं रखता तो उससे दुर्घटना के कारण कई प्राणियों को प्राणों से हाथ धोने पड़ते हैं।

ये तो जीवन की सामान्य बातें हुईं। उपयुक्त समय पर सैनिक सहायता न

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

के कारण बड़े-बड़े शूरवीरों को युद्धों में पराजित होना पड़ा। दारा शिकोह जब औरंगजेब से लड़ रहा था तो जसवंतसिंह की सैनिक सहायता निश्चित समय पर न पहुँचने के कारण उसे पराजित होना पड़ा। मराठे जब पानीपत की तीसरी लड़ाई में अहमदशाह अब्दाली से लड़ रहे थे, तब उन्हें भी उपयुक्त समय पर सैनिक सहायता न मिलने के कारण पराजय का मुँह देखना पड़ा। नैपोलियन जब अंग्रेजों के विरुद्ध वाटरलू के मैदान में लड़ रहा था तब निश्चित समय पर सैनिक सहायता न मिलने के कारण हार गया और उसके सारे स्वप्न मिट्टी में मिल गए और एक शासक को बन्दी बनना पड़ा। हरिसिंह नलवा को पठानों के विरुद्ध जमरूद में लड़ते हुए लालसिंह द्वारा सहायता न पहुँचने के कारण मृत्यु का शिकार होना पड़ा। इन ऐतिहासिक घटनाओं से पता चलता है कि उपयुयत समय पर उपयुक्त सहायता कितनी अनिवार्य है।

समय के महत्त्व का तब पता चलता है जब किसी रोगी के सम्बन्धी उसे चिकित्सक के पास लाकर कहते हैं कि आप इसको किसी प्रकार बचा लें, परन्तु चिकित्सक कहता है कि अब कुछ नहीं हो सकता। यदि आप कुछ समय पहले ले आते तो इसके प्राण बच सकते थे। उस समय सम्बन्धी पछताते हुए इसके महत्त्व को समझते हैं।

समय के महत्त्व को समझनेवाला व्यक्ति अवसर की प्रतीक्षा में रहता है। जब उसे अवसर प्राप्त होता है तो वह उसका सदुपयोग करता है। अवसर को हाथ से नहीं जाने देता। यही व्यक्ति की दूरदर्शिता होती है। परमात्मा ने मनुष्य को आँखें इतनी ऊँचाई पर दी हैं कि वह दूर तक देख सके। जैसे व्यक्ति आँखों से दूर तक देखता है वैसे ही व्यक्ति को दूर से अवसर को देखना चाहिए और प्राप्ति पर उसका सदुपयोग करना चाहिए।

पर समय-पालकता का यह अर्थ भी नहीं है कि घड़ी की ठोकों के साथ अपने जीवन की ताल बैठा लें। हम इतने समय-पालक भी न हो जाएँ कि हमारे कार्य-क्रम में थोड़ी-सी लचक न हो। यदि कार्यक्रम में लचक न हुई तो हम चिड़चिड़े स्वभाव के हो जाएँगे। प्रसन्नचित्त रहकर और दूसरों को निभाते हुए समय-पालकता को अपनाना ही हितकर है।

कुछ लोग कहते हैं कि मुझे अमुक कार्य करने का अवसर नहीं मिला अथवा अमुक कार्य करने का अवसर नहीं मिलता। यह बात प्रायः वही लोग कहा करते हैं जिनकी नीयत उस काम को करने की नहीं होती अथवा जो कार्याधिक्य के कारण अथवा प्रमाद के कारण किसी काम को आगे सरकाते रहते हैं। यदि ये तीनों कारण न हों तो कोई भी कार्य करने का अवसर मिल ही जाता है। काम करने की नीयत न होने, कार्याधिक्य और प्रमाद के कारण ही प्रायः कहा जाता है कि समय नहीं मिला। किसी भी कार्य करने का यदि दृढ़ संकल्प हो तो समय मिल

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ही जाता है।

अवकाश-प्राप्ति के पश्चात् व्यक्ति के आगे समय बिताने की समस्या उपस्थित होती है। व्यक्ति न तो सारा दिन पढ़ सकता है, न सारा दिन विश्राम कर सकता है, न सारा दिन चल-फिर सकता है, अतः वह दूसरों की संगति चाहता है। कामकाजी व्यक्तियों के पास बैठते हुए अवकाशप्राप्त व्यक्तियों को दूसरों के समय का ध्यान रखना चाहिए। दूसरे कितना समय दे सकते हैं, इस बात को जानकर दूसरों के पास बैठना चाहिए।

लोग कहते हैं कि समय बहुत बदल गया है। मैं कहता हूँ कि मनुष्य बहुत बदल गया है। समय नहीं बदलता है, मनुष्य बदलता है। मनुष्य में यदि सत्-प्रवृत्तियों की प्रबलता होती है तो समय को अच्छा कहा जाता है; यदि दुष्प्रवृत्तियों की प्रबलता होती है तो कहा जाता है कि बुरा समय आ गया है। किसी भी काल की विचारधारा स्वयं नहीं बदला करती, अपितु महापुरुष उसे बदला करते हैं—

लोग कहते हैं बदलता है जमाना लेकिन,
मर्द वो हैं जो जमाने को बदल देते हैं।।

संसार में जितने भी महापुरुष हुए हैं वे सब समयपालक थे। वे समय का सदा सदुपयोग करते थे और समय को कभी भी नहीं गँवाते थे। उन महापुरुषों के अनेक उदाहरण हमें प्राप्त होते हैं। उदाहरणस्वरूप कुछ घटनाएँ यहाँ उपस्थित की जाती हैं।

महर्षि दयानन्द जी में समय-पालकता भी प्रचुरता में विद्यमान थी। बरेली में महाराज के कई दिन तक प्रभावशाली प्रवचन हुए। एक रविवार को लोगों ने कहा—महाराज! कल छुट्टी का दिन है, इसलिए नियत समय से एक घण्टा पहले व्याख्यान आरम्भ कीजिएगा। उन्होंने उत्तर में कहा—मैं नगर से डेढ़ कोस के अन्तर पर ठहरा हुआ हूँ। यदि गाड़ी समय पर पहुँच गई तो समय पर अवश्य आ जाऊँगा। अगले दिन लोग तो समय पर पहुँच गए परन्तु स्वामी जी पौन घण्टा पीछे सार्वजनिक भवन में प्रविष्ट हुए। व्याख्यान के आरम्भ में उन्होंने कहा—मैं तो समय पर समुद्यत था, परन्तु गाड़ी नहीं पहुँच सकी। अन्त में पैदल चलकर आ रहा था कि मार्ग में गाड़ी मिली। समय-अतिक्रम करने में मेरा दोष नहीं, किन्तु बच्चों के बच्चों का है, अर्थात् बाल-विवाह की सन्तान में ऐसी निर्बलता का होना आश्चर्य नहीं है।

शाहपुरा में मध्याह्न समय भोजन पाकर स्वल्प समय के लिए सो जाया करते थे। उन दिनों में सोलह मिनट तक नींद लिया करते थे। सोते से उठकर मुँह धोते और कुल्ले करने के लिए जल लेते। नौकर भी घड़ी देखता रहता। ज्योंही सोलहवाँ मिनट आरम्भ होता त्योंही जल का कलसा और अंगोछा ले, हाथ-मुँह धुलाने के स्थान पर जाकर खड़ा हो जाता। ठीक सोलहवें मिनट की समाप्ति पर महर्षि जग

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

जाते और तत्काल मुखादि धोकर कार्य पर आ बैठते। इस घटना से पता चलता है कि वे किस प्रकार समय का सदुपयोग करते थे।

भारतीय स्वाधीनता-संग्राम के अमर सेनानी महात्मा गांधी बहुत समय-पालक थे। श्री बनारसीदास चतुर्वेदी ने महात्मा गांधी के संस्मरणों में लिखा है कि एक बार महात्माजी ने मुझे सवेरे सात और सवा सात के बीच का समय बात-चीत के लिए दिया। मैं उन दिनों नया-नया आश्रम में गया था। मन में सोचा कि बापू जाते थोड़े ही हैं, दो-चार-मिनट की देर भी हो जाए तो क्या! सात बजकर दस-बारह मिनट पर पहुँचा। बापू मुस्कराकर बोले—तुम्हारा समय तो बीत गया। अब भाग जाओ! फिर कभी समय निश्चित करके आना। मुझे बहुत लज्जित होना पड़ा।

चतुर्वेदी जी ने एक और घटना दी है। उन्होंने लिखा है कि एक बार फिर ऐसी ही दुर्घटना घट गई, पर उसमें मेरा अपराध नहीं था। बापू ने राजा साहिब को शाम के तीन बजे का समय दिया था और मेरे जिम्मे यह काम था कि मैं उन्हें लाऊँ। उन्हें अहमदाबाद से आना था, इसलिए बस एक मिनट की देर हो गई। जब मैं राजा साहिब को लेकर बापू जी की सेवा में पहुँचा तो वे बोले—मैं तो मिनटभर से आपकी प्रतीक्षा कर रहा हूँ।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

महात्मा हंसराज जी का वेतन कितना था ?

—प्राध्यापक राजेन्द्र 'जिज्ञासु', वेद सदन, अबोहर

महात्मा हंसराज ग्रन्थावली के प्रकाशन पर देश के सब भागों से विद्वानों व स्वाध्यायप्रेमी सज्जनों की बधाइयाँ, सम्मतियाँ व आशीष-वचन मुझे प्राप्त होते ही रहते हैं, परन्तु अभी-अभी महात्मा जी के जीवन-सम्बन्धी एक प्रश्न अथवा शंका की गई है। प्रश्न यह खड़ा हुआ है कि महात्मा जी कालेज-कमेटी से कितना वेतन लेते थे ? यह सर्वविदित तथ्य है कि महात्मा जी ने जीवन-भर कोई वेतन नहीं लिया। उनके ज्येष्ठ भ्राता अपने वेतन का आधा भाग हंसराज जी के कुटुम्ब के निर्वाह के लिए देते रहे।

फिर यह प्रश्न कैसे उठा कि वह क्या वेतन लेते थे ? मेरठ के आर्य पुरुष देवीदास जी ने अनजाने से लिख दिया कि महात्मा जी ७५ रु० मासिक वेतन लेते थे। श्रीमान अमर स्वामी जी ने आर्य जगत् में इसका प्रतिवाद किया तो रांची से किसी ने अमर स्वामी जी को पत्र लिखकर स्वामी जी का प्रतिवाद करते हुए वही ७५ रु० वाली बात को दोहरा दिया। इसपर श्री स्वामी जी ने मुझे पत्र लिखकर कहा कि वह मेरे द्वारा लिखित तपोनिधि हंसराज ग्रन्थ तो मँगवा ही रहे हैं, परन्तु मैं इस विषय पर अपनी अधिकार-युक्त सम्मति या व्यवस्था दूँ। मैंने तत्काल उनको पत्रोत्तर तो दे दिया परन्तु 'वेद प्रकाश' द्वारा संक्षेप से कुछ निवेदन करता हूँ।

मैंने महात्मा जी के जीवनचरित में उनके 'जीवन-समर्पण' वाले महोत्सव का वृत्तान्त उस समय के पत्रों से देखकर उद्धृत किया है। यह वृत्तान्त, जीवन-भेंट का वर्ष व ठीक-ठीक तिथि आज तक किसी भी जीवनी-लेखक ने नहीं दी। उस वृत्तान्त में स्पष्ट छपा है कि महात्मा जी ने घोषणा की कि 'मैं बिना वेतन के अपना जीवन आर्यसमाज व प्रथम डी० ए० वी० स्कूल के लिए भेंट करता हूँ।' अब कहिये कि वेतन फिर कहाँ से आ गया ?

महात्मा जी पर लिखे गये सहस्रों लेखों व दर्जनों छोटी-बड़ी जीवनियों व उनके सम्पर्क में आए अनेक पुरुषों के प्रमाण मैंने दिये हैं। मैंने उनपर लिखे प्रथम निबन्ध (शहीद महाशय राजपाल जी लिखित) को भी देखा है। प्रो० राजाराम

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

जी लिखित संक्षिप्त जीवनी भी देखी, प्रि० मेलाराम वर्क लिखित संक्षिप्त जीवन-चरित भी उद्धृत किया है। ये सब छपने से पूर्व महात्मा जी को सुना दिये गये थे। सबने यही लिखा है कि लाला मुलखराज उनके निर्वाह के लिए अपना आधा वेतन देते रहे। मेरे द्वारा लिखित तपोनिधि महात्मा हंसराज ग्रंथ छपने के पश्चात् एक और मूल्यवान् पुस्तक मैंने खोज निकाली है। यह सन् १९१९ ई० के आस-पास छपी। भूमिका लाला लालपतराय जी ने लिखी है। लाला जी कालेज-कमेटी के मन्त्री रहे। इसमें भी स्पष्ट छपा है कि महात्मा जी ने अपना कठोर व्रत शान से निभाया और एक पाई भी वेतन न लिया।

मैंने प्रथम बार महात्मा जी को सेवामुक्त होने पर दिये गये मानपत्र को ग्रन्थावली में दिया है। इसका उत्तर तो पहले भी छपता रहा है। इसमें महात्मा जी ने व्रतपालन में भाई की व भावज की सहायता के लिए अपने उद्‌गार प्रकट किये हैं। महात्मा जी के सहयोगों व शिष्य तथा कालेज-कमेटी के पूर्व प्रधान डॉ० दीवानचन्द जी को भी मैंने उद्धृत किया है। वह भी यह लिखते हैं कि महात्मा जी के निर्वाह की व्यवस्था उनके भ्राता ने की। अतः वेतन का प्रश्न उठाना सत्य की हत्या है। इतिहास को दूषित नहीं करना चाहिये।

एक अन्य प्रश्न का उत्तर भी यहाँ दे देता हूँ। मैंने ग्रंथावली में लिखा है कि महात्मा जी बी० ए० (विश्वविद्यालय) में द्वितीय रहे और पं० गुरुदत्त जी प्रथम रहे। इसपर विख्यात विद्वान् शिक्षाशास्त्री तथा अनेक विषयों के मर्मज्ञ श्री स्वामी सत्यप्रकाश जी ने शंका की कि तब तक पंजाब विश्वविद्यालय की स्थापना ही न हुई थी, अतः सम्भव यही लगता है कि महात्माजी अपने प्रदेश में द्वितीय रहे हों। मैंने स्वामी जी से कहा कि मैंने कई बार पढ़ा तथा पढ़ाया है कि पंजाब का विश्व-विद्यालय १८८२ ई० में स्थापित हो गया था, विस्तार भले ही बाद में हुआ। जब स्वामी जी ने यह प्रश्न किया तब देखने पर भी किसी प्रामाणिक पुस्तक से पंजाब विश्वविद्यालय का स्थापना-वर्ष न मिला। स्वामी श्री सत्यप्रकाश सरीखे विद्वान् की बात को यूँ ही तो टाला नहीं जा सकता। मैं पुस्तकें देखता रहा। प्रमाण मिल गये। मैंने श्री विजयकुमार जी द्वारा स्वामी जी को सूचित कर दिया कि पंजाबी विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित तथा कई प्रसिद्ध इतिहासज्ञों द्वारा लिखित पंजाब के इतिहास पर तीन खण्डों में छपे एक इतिहास-ग्रन्थ में मेरे कथन व लेख की पुष्टि मिलती है। फिर और भी कई पुस्तकों मे मैंने देख लिया, पढ़ लिया कि पंजाब विश्वविद्यालय की स्थापना सन् १८८२ ई० में हुई और पं० गुरुदत्त जी व महात्मा हंसराज जी ने १८८५ ई० में बी० ए० कर लिया था। इसलिये इस तथ्य में तनिक भी सन्देह नहीं कि महात्मा जी विश्वविद्यालय में द्वितीय रहे। विस्तार से और सब-कुछ ग्रंथावली में पढ़ें।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

हमारे विशिष्ट संग्रहणीय प्रकाशन

आलोचना

प्रो० नित्यानन्द पटल

प्रेमचन्द के उपन्यास साहित्य में सांस्कृतिक चेतना 125.00
छायावाद : नया मूल्यांकन 35.00
पूर्व और पश्चिम 35.00

उपन्यास तथा कथा साहित्य

शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय

अपने पराये 12.00
अकेली 12.00
चन्द्रनाथ 12.00
अनुराधा 12 00
परिणीता 12.00
बैकुंठ का दानपत्र 12.00
बड़ी दीदी 12.00
देवदास 15.00
बिराज बहू 12.00
विन्दु का बेटा 12.00
ब्राह्मण की बेटी 12.00
पण्डित मोशाय 12.00
देहाती समाज 15.00
मझली दीदी 12.00
श्रीकान्त 60.00
सुभदा 15.00

सुनील शर्मा

हितोपदेश 25.00

वि० अनन्त

माँ 30.00
आज की सावित्री 30.00
दुल्हन 30.00
देवता 30.00
मुझे जीने दो 30.00
कसम 30.00

तकनीकी

हयात

सुबोध रेडियो ट्रांजिस्टर मैकेनिक 25.00
सुबोध ट्रांजिस्टर सर्विसिंग 20.00
सुबोध ट्रांजिस्टर गाइड 25.00

घर गृहस्थी

डा० लक्ष्मीनारायण शर्मा

गर्भ स्थिति, प्रसव और शिशुपालन 25.00

सुशीला कपूर

आधुनिक सिलाई-कटाई 25.00

मीनाक्षी धींगड़ा

पाक कला (पॉकेट साइज) 6.00
मिष्ठान्न कला (पॉकेट साइज) 6.00
अचार मुरब्बे चटनी (पॉकेट साइज) 6.00
शर्वत आइस्क्रीम स्ववेश (,,) 6.00

स्वास्थ्य

डा० लक्ष्मीनारायण शर्मा

हृदय रोग : कारण निवारण 20.00

डा० टी० बी० एल० जायसवाल

कैंसर : कारण और निवारण 20.00

वैद्य सुरेश चतुर्वेदी

आहार चिकित्सा 25.00

डॉ० समरसेन

योगासन से इलाज 20.00

डॉ० प्रकाश भारती

घर का डॉक्टर (होम्योपैथी) 25.00

विविध

डॉ० द्वारकाप्रसाद

योग का वरदान 25.00

अरुण अर्णव

सचित्र एशियाई खेल 25.00
(9वें एशियाई खेलों तक)

राजीव वत्स

जूडो फॉर ऑल 15.00
जूडो आत्मरक्षा के लिए 10.00

कृष्ण विकल

वाणी 20.00

सुबोध पब्लिकेशन्स
2/3, अंसारी रोड, नई दिल्ली-110002

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

बाल एवं प्रौढ़ साहित्य

आचार्य चतुरसेन

आदर्श बालक -1	6.00
आदर्श बालक -2	6.00

सन्तराम वत्स्य

लोक व्यवहर	5.00
संविधान की कहानी	10.00
भीष्म पितामह	6.00
वीर अर्जुन	6.00
महाबली भीम	6.00

यशपाल जैन

बोध कथाएँ	5.00
प्रेरक कथाएँ	5.00

श्यामचन्द्र कपूर

प्रत्येक का मूल्य 6.00

सच्चा सपूत	(जातक कथाएँ)
नंदिनी का वरदान	(रामायण की कथाएँ)
शरणागत की रक्षा	(वेद की कथाएँ)
कीर्ति का मार्ग	(महाभारत की कथाएँ)
सबसे बड़ा ज्ञानी	(उपनिषद् की कथाएँ)
फूलों की वर्षा	(पुराण की कथाएँ)
विश्वास का फल	(कुरान की कथाएँ)
जनता का प्यारा	(भागवत की कथाएँ)
सपने देखने वाला	(बाइबिल की कथाएँ)
आशा की ज्योति	(जैनग्रन्थों की कथाएँ)

पं० आनन्दकुमार

दो सूतरी पोलटिक	25.00

यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र'

इक्यावन कहानियाँ	110.00
एक और श्रीगणेश	22.00
अपने-अपने दायरे	30.00

सुमेधा

हमारी एकता के प्रतीक त्यौहार	6.00

विनोदचन्द्र पांडेय 'विनोद'

ऋतुगीत		6.00
पितृभक्त बालक	शरण	6.00
तपस्वी बालक	लक्ष्मी	6.00
ज्ञानी बालक	प्रभात कुमार	6.00
भक्त बालक	संगीता	6.00
ईमानदार बालक	सुदेश शरण	6.00

शिवकुमार गोयल

क्रांतिकारी सावरकर	6.00

शान्ति भट्टाचार्य

बलिदान की कहानियाँ	6.00

स्कूल, कॉलेज में खेले जाने योग्य चिरंजीत के नाटक

हास्यमंच—हम-तुम	20.00
हास्यमंच—घर-दफ्तर	22.00
हास्यमंच—देश-विदेश	25.00
पाँच प्रहसन	25.00
मन्दिर की जोत	18.00
दादी माँ जागी	25.00
महाश्वेता (उपन्यास)	45.00
रतजगा	20.00

श्री पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय

आर्यसमाज के मनस्वी विद्वान् श्री पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय ने आर्य-वैदिक साहित्य लिखकर बड़ी सेवा की है। अभी हाल ही में उनकी कृतियों का संकलन करते हुए **श्री स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती जी** को उनके लिखे **हिन्दी-शेक्सपियर** प्राप्त हुए।

'शेक्सपियर के नाटक'

३७ नाटकों के कथानक तीन भागों में मूल्य १५०.००

सुबोध पब्लिकेशन्स

२/३ बी, अंसारी रोड, नयी दिल्ली-११०००२

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

चन्द्रगुप्त के महामन्त्री चाणक्य प्रणीत

चाणक्यनीतिदर्पणः

भारतीय और पाश्चात्य सभी विद्वान् चाणक्यजी की कूटनीति का लोहा मानते हैं।

चाणक्य नीति पर हिन्दी, गुजराती, बंगला, अंग्रेजी आदि भाषाओं में सैकड़ों टीकाएँ लिखी गई हैं परन्तु वे केवल संक्षिप्त भावार्थ मात्र हैं

इस महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ का अब तक कोई विस्तृत भाष्य नहीं लिखा गया था।

आर्यजगत् के सुप्रसिद्ध विद्वान्

स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती

ने इस पर भाष्य लिखकर इस कमी को पूरा कर दिया है।

आचार्य उदयवीरजी शास्त्री ने पुस्तक की पाण्डुलिपि का अवलोकन कर इस ग्रन्थरत्न की भूरि-भूरि प्रशंसा की है।

लगभग ३०० पृष्ठ के ग्रन्थ का मूल्य केवल ५०.००

श्रीमद्वाल्मीकि रामायण

आर्य जगत् के सुप्रसिद्ध विद्वान्, निरन्तर साहित्य-साधना में संलग्न, रामायण के समालोचक एवं मर्मज्ञ

लेखक—स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती

- ☐ यदि आप अपने प्राचीन गौरवमय इतिहास की झाँकी देखना चाहते हैं,
- ☐ यदि आप मर्यादा पुरुषोत्तम राम के जीवन का अध्ययन करना चाहते हैं
- ☐ यदि आप प्राचीन राज्य-व्यवस्था का स्वरूप देखना चाहते हैं,
- ☐ यदि आप रामायण के सम्बन्ध में प्रचलित भ्रान्त धारणाओं का समाधान पाना चाहते हैं,
- ☐ यदि आप भ्रातृ-प्रेम, नारी-गौरव, आदर्श सेवक, आदर्श मित्र, आदर्श राज्य, आदर्श पुत्र के स्वरूपों का अवलोकन करना चाहते हैं,
- ☐ यदि आप रामायण का तुलनात्मक अध्ययन करना चाहते हैं,

तो यह रामायण पढ़ जाइए। सैकड़ों टिप्पणियों से समलंकृतसम्पूर्ण रामायण ६००० श्लोकों में समाप्त। मूल्य रु० १००,००

प्रकाशक-मुद्रक विजयकुमार ने सम्पादित कर अजय प्रिंटर्स, दिल्ली-३२ में मुद्रित करा वेदप्रकाश कार्यालय, ४४०८ नयी सड़क, दिल्ली से प्रसारित किया।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi